सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष : 44, अंक : 8

नवम्बर 2011

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सचौंई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

चला लक्ष्मीश्चला: प्राणाश्चलं जीवित यौवनम्।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चल:।।

(चाणक्यनीति दर्पण)

अर्थात् इस चराचर जगत में लक्ष्मी (धन सम्पदा), प्राण यौवन और जीवन (आयु) – सब चलायमान और नश्वर हैं, केवल एक धर्म ही निश्चल और शाश्वत है। जो सदा साथ रहता है और मृत्यु के बाद भी साथ जाता है। अत: सुख प्राप्ति के लिए हमें धर्म का आचरण करना चाहिए। पापाचरण कदापि नहीं।

◆◆◆

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

(कठोपनिषद् 2/2/9)

अर्थात् जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट एक ही अग्नि नाना रूपों में उनके समान रूपवाला सा हो रहा है, वैसे ही समस्त प्राणियों का अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपों में उन्हीं के जैसे रूपवाला हो रहा है और उनके बाहर भी है।

◆◆◆

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

(गीता 5/29)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला सम्पूर्ण लोकों के ईश्वर का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतप्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थ रहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते—करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 44 अंक : 8

यामाराध्य विरिञ्चिरस्य जगतः स्रष्टा हरिः पालकः।
संहर्ता गिरिशः स्वयं समभवद्धयेया च या योगिभिः।
यामाद्यां प्रकृतिं वदन्ति मुनयस्तत्त्वार्थविज्ञा परां
तां देवीं प्रणमामि विश्वजननीं स्वर्गापवर्गप्रदाम्।।

जिनकी आराधना करके स्वयं ब्रह्माजी इस जगत के सृजनकर्ता हुए, भगवान् विष्णु पालकर्त्ता हुए तथा भगवान शिव संहार करने वाले हुए, योगिजन जिनका ध्यान करते हैं और तत्वार्थ जानने वाले मुनिगण जिन्हें मूल प्रकृति कहते हैं- स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले उन जगज्जननी भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

नवम्बर 2011

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख–योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	कामाख्या की यात्रा में वसिष्ठाश्रम–दर्शन –डॉ. विजय सिंह	12
4.	मेरे श्री गुरुदेव –ए.के. सिंह	15
5.	श्रीगीतामृत पदावली	18
6.	योग –श्रीमती कुसुम खुराना	22
7.	श्री प्रभु कृपालीला –जगदीश राए बंसल	25
8.	क्षेत्रमित्यभिधीयते –पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय	29
9.	विलय	33
10.	समाधि –सिद्ध महात्मा श्री सुमङ्ग जी	34
11.	स्वस्थ रहने की रामबाण दवा	38

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 270.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

• *हमारा विशेष लेख*

योगासन एवम् ऊर्ध्वरेतसता

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

षटचक्रों के अन्दर मणिपूरक नामक नाभि का चक्र है। मणिपूरक चक्र का स्थान नाभिमण्डल है। नाभिमण्डल ही वीर्याशय यानी वीर्य का स्थान है। मनुष्य के मन में जब किसी प्रकार की काम-वासना का उदय होता है तो कामाग्नि की ऊष्णता से वीर्य सारे शरीर से आकर्षित होकर स्खलन की ओर जाता है। आयुर्वेद के परमाचार्य श्री वागभट्ट ने वीर्य को वपुसार, जीवनाशय, गर्भबीज आदि नामों से उद्घोषित किया है। जैसे:-

शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलं पुष्टिकरं स्मृतम्।
गर्भ बीजं वपुः सारो जीवनाश्रय उत्तमः।।

अतः इसका सारे शरीर में व्यापक रहना जीवधारियों के लिए बहुत ही आवश्यक है। जो व्यक्ति किसी भी प्रकार का व्यायाम नहीं करते हैं, खट्टे-मीठे पदार्थ खाते रहते हैं, उनके मन में काम-वासना बढ़ती रहा करती है। खाली बैठे रहने से मन में कुभावनायें आती हैं और शनैः शनैः कुकर्म-चेष्टायें बढ़ने लगती हैं, जिससे मनुष्य उन्नति के लिए प्राप्त हुए अपने पवित्र जीवन को पतन की ओर ले जाने का कारण बन जाता है। इसलिए वीर्य को ऊर्ध्वरेतस बनाने के लिए साधक को पहले ऐसा प्रयत्न कर लेना चाहिए कि वपुसार जीवनाश्रय वीर्य को सारे शरीर में व्यापक कर डाले। वीर्य को शरीर में व्यापक करने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि मनुष्य व्यायाम की आदत डाले। व्यायाम करने के जितने प्रकार आज भारत व दूसरे देशों में प्रचलित हैं वे सब मनुष्यकृत होने के नाते अधिक लाभदायक नहीं हैं। ऐसे सभी व्यायाम शारीरिक जड़ता के दाता हैं। ये वीर्य को शरीर में व्यापक तो बनाते हैं किन्तु उसका प्रभाव सभी अंगों पर समान रूप से नहीं पड़ता। स्नायु कहीं-कहीं तो बहुत ही दृढ़ हो जाते हैं जिससे सारे शरीर में रस व रक्त का समान रूप से वहन नहीं हो पाता। जो व्यायाम हमारे पूर्वज योगाचार्यों ने अपने ग्रंथ में लिखे हैं वे सभी उनकी ऋतम्भरा प्रज्ञा की उत्तम देन हैं और ये सभी व्यायाम स्नायु-मण्डल को कोमल, रस व रक्त का ठीक तरह से वहन करने वाले बनाते हैं एवं मन की एकाग्रता के दाता हैं, अतः शरीर को नीरोग, हल्का, फुर्तीला ओज-तेज प्रधान एवं वीर्य को शरीर को व्यापक बनाने के लिए योगासन बहुत उपयोगी है। जो लोग किसी योग शिक्षण केन्द्र में जाकर नियमानुवर्तिता से योगासनों का अभ्यास करते हैं उनका वीर्य शरीर में व्यापक हो जाता है। कामोद्दीपक भावनायें स्वतः ही

शान्त होने लगती है तथा मन आत्म–चिन्तन की ओर बढ़ने लगता है। योगासनों का व्यायाम सभी प्रकार से उत्तम है, किन्तु वीर्य को शरीर में व्यापक बनाये रखने के लिए उदर–सम्बन्धी आसनों का अभ्यास बहुत ही आवश्यक हो जाता है। जैसे:– उत्तानपादासन, पवनमुक्तासन, नावासन, नाभ्यासन, धनुरासन, शलभासन, मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन आदि। ये सभी आसन पेट से सम्बन्ध रखने वाले हैं। योग शिक्षण केन्द्रों में सभी आसन नियमानुसार कराये जाते हैं। अभ्यासी लोग पहले खड़े होने के आसन करते हैं उसके बाद बैठने–लेटने के आदि क्रमानुसार करते हैं।

उपरोक्त विधि के अनुसार वीर्य शरीर में व्यापक तो हो ही जायेगा, किन्तु ऊर्ध्वरेतसता प्राप्त करने के लिए कुछ खास–खास अभ्यास हैं जिनका दिग्दर्शन हम निम्नलिखित पंक्तियों में कर रहे हैं।

हमारे योगाचार्यों ने 'सिद्धासन' को सर्व सिद्धियों का दाता बतलाया है। 'सिद्धासन' की एक विशेषता यह है कि उसके करने से मनुष्य स्वाभाविक ही संयतेन्द्रिय बन जाता है क्योंकि सिद्धासन लगाने से वीर्यवाहिनी नाड़ी संकुचित हो जाती है और उस नाड़ी के दब जाने से वीर्य का अधोवेग रुककर ऊर्ध्ववेग बन जाता है। 'सिद्धासन' का प्रकार योगाचार्य भगवान सदाशिव ने शिवसंहिता में इस प्रकार बतलाया है:–

योनिं संपीड्य यत्नेन पाद मूलेन साधकः।
मेढ्रोपरि पादमूलं विन्यसेत योगवित्सदा।।
ऊर्ध्वं निरीक्ष्य भ्रूमध्यं निश्चलः संयतेन्द्रियः।
विशेषोऽवक्राश्च रहस्युद्वेगवर्जितः।।
एतत्सिद्धासनं ज्ञेयं सिद्धानां सिद्धिदायकम्।

अर्थात्– अपने बायें पैर की एड़ी को अण्डकोषों के नीचे योनिस्थान में (जिसको सीवनी कहते हैं) ले जाकर दृढ़ता के साथ जमा दो। पीछे गुदाद्वार के नीचे कोई कपड़ा या कपड़े की साधारण सी गद्दी रख दो जिससे लिंगनाल को दबाने में वह गद्दी सहायक हो जाये। इस प्रकार बायें पैर की एड़ी को योनिस्थान में दृढ़ता से जमाकर दाहिने पैर की एड़ी को लिंगनाल के ऊपर जमाकर रखो। दोनों पैरों के टखने परस्पर मिले हुए हों। एक पैर लिंगेन्द्रिय के नीचे योनिस्थान में हो और दूसरा लिंगेन्द्रिय के ऊपर जमा हुआ हो। इस विधि से बैठ जाओ। अपने मेरुदण्ड को सीधा रखो। दोनों हाथों को तनाव के साथ घुटनों पर रखो एवं दृष्टि को भ्रूमध्य में ले जाओ, दृष्टि थोड़ी सी झुकी हुई हो। मन में कोई भी उद्वेग न हो। इसको योगाचार्यों ने सिद्धासन कहा है।

जो लोग केवलमात्र सिद्धासन का अभ्यास करते रहते हैं उनके भी मनोविकार शांत हो जाते हैं और वीर्य की अधोगति रुक करके वेग ऊपर की ओर बढ़ने लगता है।

इसके साथ एक विशेष प्रकार का प्राणायाम करो। अपने प्राणवायु को वेग के साथ बाहर निकाल दो। उड्डियान बंध के साथ आधार चक्र को ऊपर की ओर खींचो और प्राणवायु को रोक दो। आधार चक्र खींचे रहो। अपने मन में धारणा करो कि मैं अपने वीर्य को ऊपर की ओर खींच रहा हूँ। अनुभवी सन्तों ने इस प्राणायाम में लिंगेन्द्रिय को ऊपर की ओर खींचने की भी विधि लिखी है, किन्तु नाभिमण्डल से नीचे की नाड़ियों को अपने हाथ की हथेली से तनाव देकर रखोगे तो भी परिणाम वही निकलेगा। अपने पेट की वायु को बाहर निकाल देने पर उसको यथाशक्ति बाहर रोके रहना चाहिए। जब घबराहट मालूम पड़े तब धीरे-धीरे उस वायु को अन्दर ले लो, किन्तु अन्दर रोकने का अभ्यास नहीं करना चाहिए। वर्षों तक योग साधक यदि इस प्राणायाम को करता रहता है तो वह अवश्य ही ऊर्ध्वरेतस बन जाता है। उसका वीर्य ऊर्ध्वगमन करने लगता है और वह बिन्दुजय कर लेता है।

सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिद्धयति भूतले।

अर्थात्-बिन्दुजय प्राप्त करने के बाद ऐसा कोई साधन नहीं जिसको मनुष्य न कर सके। योगदर्शन में ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठा का फल बतलाया है:-

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

यस्य लाभादप्रतिघात् गुणानुत्कर्षयति सिद्धश्च विनियेषु ज्ञानमाधतुं समर्थो भवतीति।

अर्थात्-इस प्रकार ब्रह्मचर्य धारण करने से योगी अपने शरीर में अलौकिक गुणों का आकर्षण कर लेता है और शनैः शनैः उसका मन-बुद्धि का इतना ऊँचा विकास हो जाता है कि उसे अपने विनीत शिष्यों के अन्दर शक्ति संचार करने की योग्यता आ जाती है। इसलिए उपरोक्त साधनाओं द्वारा साधक को अपने आपको ऊर्ध्वरेतस बनाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्यान्य योग साधनों में शक्तिचालिनी मुद्रा जो बज्रासन के अभ्यास से की जाती है वह भी ऊर्ध्वरेतसता की जननी है। शक्तिचालिनी मुद्रा के अन्दर विपरीत पाद बज्रासन लगा करके भस्त्रिका प्राणायाम किया जाता है, जिसके फलस्वरूप कुण्डलिनी महाशक्ति का जागरण एवं वीर्य का ऊर्ध्वकर्षण अनायास ही होता है।

शीर्षासन एवं ऊर्ध्वरेतसता

शीर्षासन हमारे योगाचार्यों की अमर देन है इसको विपरीतकरणी मुद्रा के रूप में भी बतलाया गया है। जो लोग नियम से विधिपूर्वक शीर्षासन का अभ्यास करते हैं उनका वीर्य भी ऊर्ध्वगमन करने लगता है किन्तु शीर्षासन के अभ्यासियों को चाहिए कि इस विपरीतकरणी मुद्रा को किन्हीं योग-शिक्षण केन्द्रों में जाकर सीखें। शीर्षासन के अभ्यासी लोगों को मस्तिष्क का ऊपर वाला भाग जिसे कपाल कहते हैं, वही जमीन पर लगाना चाहिए और अपने आहार का ख्याल रखना चाहिए। इसके अभ्यास के शास्त्रीय लेख है।

अधः शिरश्चोर्ध्वपादः क्षणं स्यात्प्रथमे दिने।

क्षणाच्च किञ्चिदधिकमभ्यसेच्च दिने दिने।।
पलितं पलितं चैव षण्मासोर्ध्व न दृश्यते।
याममात्रं तु यो नित्यमभ्यसेत्स तु कालजित्।।

अर्थात्–पहले दिन एक क्षण के लिए शीर्षासन करना चाहिए। दूसरे दिन एक क्षण से कुछ अधिक बढ़ाये। इस प्रकार बढ़ाते–बढ़ाते महिने भर में दो–तीन मिनट तक ही बढ़ाना चाहिए। शीर्षासन के अभ्यासी योगी को भूखा नहीं रहना चाहिए।

नित्यमभ्यासयुक्तस्य जठराग्निविवर्धिनी।
आहारो बहुलस्तस्य सपाद्यः साधकस्य च।।
अल्पाहारो यदि भवेदग्निर्दहति तत्क्षणात्।।

अर्थात्–जो साधक शीर्षासन का अभ्यास करता है उसकी उत्तरोत्तर जठराग्नि बढ़ती चली जाती है। इसलिए खान–पान में उसको संकोच नहीं करना चाहिए और न किसी प्रकार का व्रतादि करना चाहिए। क्योंकि यदि शीर्षासन का अभ्यासी अल्पाहार होगा तो उसकी जठराग्नि स्वयं उसका दहन कर देगी। शीर्षासन करने वाले साधक को भी अपने अभ्यास काल में यह धारणा करते रहना चाहिए कि मैं अपने वीर्य को नाभिमण्डल से ऊपर की ओर आकर्षित कर रहा हूं। नाभि–मण्डल के नीचे के भाग को ऊर्ध्वकर्षण करने से साधक अवश्य ही ऊर्ध्वरेतसता को प्राप्त कर लेता है।

यहाँ जिन क्रियाओं का संकेत किया गया है उन सबको साधक को समझकर करना चाहिए। यदि विधि पूरी तरह समझ में न आ सके तो अवश्य योग–शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त करके ही इन क्रियाओं को करना चाहिए जिससे वे पूर्ण लाभ उठा सकें।

नीति वचन

जिस मनुष्य में स्वयं का विवेक, चेतना एवं बोध नहीं है, उसके लिये शास्त्र क्या कर सकता है। आँखों से हीन अर्थात् अन्धे मनुष्य के लिए दर्पण बहरे के लिए राग जिस तरह व्यर्थ है उसी तरह अविवेकी और अश्रद्धालु के लिए शास्त्र भी किसी काम का नहीं होता।

–स्वामी विवेकानन्द

योग – वार्ता

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

(गतांक से आगे)

पूज्य गुरुदेव – लल्ला–योग में कुछ ऐसी साधनाएँ व क्रियायें है जिनको करके हर व्यक्ति स्वास्थ्य लाभ ले सकता है। हमारा जीवन तत्व साधन है, अमर तत्व साधन है, फल तत्व साधन है इनका अभ्यास करके पूर्ण स्वास्थ्य लाभ मिल सकता है। वमन धौति नैति आदि क्रियायें है जिनसे शरीरस्थ मल दूर हो जाते है। मलो का रेचन हो जाता है शोधन हो जाता है।

'सर्वेषाम् रोगाणाम् निदानम् कुपिता: मला:'। शरीर में उदर में जब मल कुपित हो जाता है तो भिन्न प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं। रोगी की दशा को देख कर ही साधन कराने चाहिए। रक्तचाप गिरा हुआ हो और उस व्यक्ति को शीतली प्राणायाम, मकरासन, शवासन कराया जाये तो नुकसान ही होगा, लाभ नहीं होगा। ठीक प्रकार आसन एवं क्रियायों को करने से अवश्य–अवश्य लाभ होता है शरीर बिल्कुल बदल जाता है। कुछ कठिन क्रियाओं हैं जिनको हर व्यक्ति नही कर सकता, एकाग्र मन वाला ही कर सकता है। पंच महाभूतों की साधना सिद्ध योगी पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश को अपने आधीन कर लेता है। ऐसे योगी जात्यन्तर परिणाम कर सकते हैं। शेर के परमाणुओं को अपने अन्दर इकट्ठे करके अपने को उस आकृति में बदल सकता है। ऐसे योगी अपने संकल्प से रोगी के खराब फेफड़े को भी ठीक कर सकते हैं। उन्हें नव जीवन दे सकते हैं। जिस तत्व की शरीर में आवश्यकता होती है उसे ही शरीर में प्रवेश करा सकते हैं। ऐसे योगी दूसरे का भी कायाकल्प करा सकते हैं। असाध्य से असाध्य रोग संकल्प मात्र से ठीक कर सकते हैं। हमारे पास प्रात: काल कई सौ की तादाद में साधन करने आते हैं। जो साधन व क्रियायें करते हैं उन्हें अवश्य ही लाभ होता है। किन्तु प्राय: लोग प्रसाद से ही ठीक होना चाहते हैं। साधन करना नहीं चाहते हैं। मानस रोगी प्रसाद से ही ठीक होते हैं। किन्तु हर व्यक्ति प्रसाद से ही ठीक होना चाहता है। यह ठीक नहीं है। कर्म भोग भोगें वे और हम उन्हें पुष्प प्रसाद देते रहें। यह ठीक नहीं है। साधन स्वयं करना होता है। हमने जिन–जिन लोगों को नेति, धौति आदि क्रियायें कराई हैं उन्हें अवश्य ही लाभ हुआ होगा तुम उन लोगों से पूछ लेना।

केन्द्र निदेशक : आजकल स्कूलों–कॉलेजों में भी योग को कराये जाने की बात चल रही है। आप बतायें कि योग का बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ेगा और इसके कराने वाले लोग कौन होंगे?

पूज्य गुरुदेव : लल्ला ! योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा में तकनीकि विभाग में भी हम अध्यक्ष है। धीरेन्द्र ब्रह्मचारी निदेशक है, स्कूलों के पाठ्यक्रम में सारे आसन, क्रियायें, प्राणायाम

आदि को जोड़ दिया है किन्तु बच्चे इन साधनों को कर सकेंगे यह अलग बात है। हर व्यक्ति हर साधना का अधिकारी नहीं होता है। अधिकारी का अर्थ है – 'कार्यान्वयन सामर्थ्य'। दो साल के बच्चे के सिर पर दस सेर का वजन रख दिया जाये तो वह मर ही जायेगा या सन्निपात के रोगी को हलुआ, मालपुआ खिलाया जाये तो वह जल्दी ही मर जायेगा। इसलिए स्कूलों में कठिन क्रियायें नहीं करवानी चाहिए। कठिन क्रिया तो योग के अध्यापक या प्रचार करने वालों को भी नहीं आती है। मुझे एक बात याद आई – दिल्ली में एक बार विश्व योग सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में मुख्य विषय था कि योग यूनिवर्सिटी कहाँ पर कायम की जाये। सम्मेलन के अध्यक्ष क्रिसटोफर हिल थे और सचिव थे रूस के प्रो. सिडनी। विदेशी लोगों का कहना था कि यूनिवर्सिटी भारत में न होकर अन्य कहीं विदेश में होनी चाहिए। मुझे भी सम्मेलन में आमन्त्रण था। मैंने कहा योग शब्द भारत का है। भारत के योगी ही ठीक प्रकार से योग को जानते हैं। यहाँ जितने भी विदेशी बैठे हैं कोई भी ठीक से योग की परिभाषा बता दे? आज विदेश से यहाँ योग सीखने आते हैं। योग भारत का है। एक बार हमारे पास एक विदेशी व्यक्ति का पत्र आया उसमें लिखा था हम 35 व्यक्ति आपके आश्रम में योग सीखने आयेंगे। हमें वहाँ क्या–क्या सुविधायें मिलेंगी। हमने लिखा था वहाँ तुम्हें सादा भोजन मिलेगा, रहने को कमरे मिलेंगे, दूध दिया जायेगा किन्तु हमारी एक शर्त होगी – हम माँस खाने वाले व शराब पीने वालों को योग नहीं सिखायेंगे। पत्र में एक बात और लिखी थी कि हम विदेशी अपने समय के पाबन्द होते हैं हर चीज समय पर करते हैं। आपके भारत में लोग बसों के इन्तजार में कई–कई घण्टे व्यर्थ गंवा देते हैं। ये समय की कीमत नहीं जानते हैं। ऐसा तो नहीं होगा। हमारा समय बर्बाद हो जाये।

हमें उनका यह लिखना अच्छा नहीं लगा। हमने उत्तर में लिखा – मैं एक भारतीय साधु हूँ। हमारा एक साधु अमेरिका गया था वहाँ उन्हें बोलने के लिए तीन मिनट का समय दिया था, किन्तु वे तीन दिन तक बोलते रहे और लोग भेड़–बकरियों की तरह उनके पीछे–पीछे लगे रहे। यहाँ मैं तो तुम्हारा समय खराब नहीं करूँगा किन्तु तुम अपना समय खराब नहीं करना।

दिल्ली के इस सम्मेलन में भी यह विदेशी लोग हमसे थोड़ा चिढ़ते थे। हम बाहर लॉन में बैठे थे। हमारे साथ 100–150 बच्चे भी थे वे सब ध्यान में बैठे हुए थे। उनकी अच्छी–अच्छी स्थितियाँ बनी हुई थीं। क्रिसटोफर ने सिडनी को हमारे पास भेजा। देखो! यहाँ क्या भीड़ लगी है? सिडनी के मांगने पर हमने उसे भी पुष्प प्रसाद दे दिया। वह 4 घण्टे तक ऊपर को मुँह खोले ध्यानस्थ बैठा रह गया। उधर उनके कार्यक्रम का समय निकला जा रहा था। क्रिसटोफर बार–बार आदमियों को भेजता था सिडनी को उठा लाने के लिए। किन्तु वह उनसे उठा नहीं। क्रिसटोफर स्वयं आये। शी–शी करते रहे उठाने का प्रयास किया किन्तु वह उठे नहीं। अन्त में वह कहने लगे। महाराज जी, इन्हें उठा दो। हमने कहा – 'वह समय बर्बाद कर रहा है, तुम उठा ले जाओ।' किन्तु अत्यन्त अनुनय विनय को देखकर हमने उसे उठा दिया। उठने के बाद वह सीधे स्टेज पर गया हमारी बहुत बड़ाई की, कहने लगे हमें आज सच्चे योगी मिले हैं। योग भारत

में ही है –

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रम् शिक्षेरन् पृथिव्याम् सर्व मानवाः।।

यहीं से सारे संसार को ज्ञान मिलेगा। इसलिए कोई योग का वेत्ता क्रियायें करायेगा तो अवश्य लाभ होगा। पुस्तकों के आधार पर योग नहीं करा सकते। न ही योग की पुस्तकों के आधार पर कराना चाहिए।

केन्द्र निदेशक : महाराज जी, आप योग को किस दृष्टि से देखते हैं? यह केवल शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ही है या ईश्वर प्राप्ति के लिए भी।

पूज्य गुरुदेव : लल्ला! योग इहलौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के कल्याण के लिए है। 'शरीरमाद्यं खुल धर्मसाधनम्'। इस शरीर से ही मनुष्य स्वस्थ रहकर ईश्वर प्राप्ति के लिए यत्न कर सकता है। योगासनों में यह विशेषता है कि इनके अभ्यास करने से शारीरिक तथा आध्यात्मिक दोनों लाभ होते हैं। हमारे योग के आचार्यों ने सिद्धासन या पद्मासन आदि आसनों का उपदेश किया है। मेरुदण्ड को सीधा रख कर समकाय शिरोग्रीव होकर सिद्धासन या पद्मासन लगाने से अग्न्यासन आदि पाचन संस्थान ठीक प्रकार से कार्य करते हैं।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राण–पानं तथापरे।
प्राणायान गति रुद्धवा प्राणायाम परायणाः।।

पंच वायु हमारे शरीर में काम करते रहते हैं। इसी से शरीर की समस्त क्रियायें होती हैं। हृदय में प्राण वायु रहती है नाभि में समान वायु, गुदा में अपान वायु कण्ठ देश में उदान वायु तथा व्यान सारे शरीर में व्याप्त रहता है। पद्मासन लगाकर उड्डियान बन्ध करने से समान वायु प्रदीप्त होती है। जिससे अग्न्याशय, आमाशय आदि पक्वाशय ठीक प्रकार से कार्य करते हैं।

'समान जया ज्वलनम्' – समान वायु पर जय करने से अग्नि प्रदीप्त होती है। इस प्रकार से स्वास्थ्य लाभ के साथ–साथ मेरुदण्ड को सीधा रखने से पारमार्थिक लाभ होता है। सुषुम्ना में प्राण वायु के प्रवेश होने से मन अपने आप एकाग्र होता है और ध्यान में प्रवृत्ति बनती है। पश्चिमोत्तान करने से वायु का म. वाहन यकृत, प्लीहा, आमाशय, मलाशय आदि ठीक–ठीक काम करते हैं। साधक सीधा बैठा रहे तो भी मन एकाग्र हो जाता है। सीधा लेटा रहे तो भी मन में एकाग्रता आ जाती है। सीधे बैठने से मन स्वतः एकाग्र होने लगता है। वितर्क विचार आदि भी। ध्यान स्थिति बनती है। अस्मि–अस्मि वृत्ति शेष रह जाती है। और अन्त में प्राप्त होती है – वह वृत्ति भी शाँत हो जाती है और निर्बीज समाधी प्राप्त होती है।

इस प्रकार से शारीरिक या इहलौकिक लाभ के साथ–साथ पारलौकिक लाभ भी स्वतः होता है।

केन्द्र निदेशक : समाज में कई बार कुछ लोग अपने आपको योगी कहलाते हुए

गुप्तांगों से कुछ क्रियायें करते हुए जनता में भद्दा प्रदर्शन करते हैं। आपके मत में क्या यह योग है?

पूज्य महाराज जी : नहीं, लल्ला, इस प्रकार के प्रदर्शन करना कोई योग नहीं है। ये लोग कुछ छोटी-मोटी क्रियायें सीख लेते हैं। आम जनता में अपने को योगी होने का झूठा दिखावा करते हैं। उनकी कोई समाधी नहीं होती, मन एकाग्रता उन्हें प्राप्त नहीं होती। ये लोग तो सम्मान और पैसा कमाने के लिए यह सब करते हैं। लोग उन्हें योगी मानकर खूब पैसा चढ़ाते हैं। किन्तु ये लोग योगी नहीं होते हैं। ये तो एक तरह से योग का अपमान करते हैं।

केन्द्र निदेशक : महाराज जी, समाज में कुछ लोग तांत्रिक विद्या का प्रयोग करते हैं और अपने को योगी बता कर चमत्कार दिखाते हैं वे लोग माँस मदिरा और स्त्री शरीर का प्रयोग करके अपने को योग सिद्ध करते हैं। आपके योग में और इस प्रकार के योग में क्या फर्क है?

पूज्य गुरुदेव जी : लल्ला ! तीन प्रकार की सिद्धियाँ मानी जाती हैं। कुछ लोग तमोगुण, रजोगुण वृत्ति के होते हैं। तामस मन्त्रों का जाप करते हैं। उनके अन्दर अन्धकार प्रधान छोटी-मोटी ताकतें आ जाया करती हैं। ये तान्त्रिक क्रियायें योग से भिन्न हैं। योग में तो शुद्ध आहार सत्य, अहिंसा, 'ब्रह्म चर्यास्ते परिग्रह' का पालन करना होता है। यम नियम पालना योगी के लिए आवश्यक होते हैं। ब्रह्मचर्य का पालन योग का आधार है। ब्रह्मचर्य में नारी का क्या काम? यह तो व्यभिचारियों का काम है।

केन्द्र निदेशक : महात्मा गाँधी जी ने ब्रह्मचर्य पर बड़ा जोर दिया है। तो क्या ब्रह्मचर्य के लिए परिवार से अलग ही रहना चाहिए या कैसे करना चाहिए?

पूज्य गुरुदेव : लल्ला! हमारे ऋषियों ने चार आश्रम बनाये हैं। ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचारी को विद्याध्यन के साथ योग आसन एवं प्राणायाम की साधना कराई जाती थी उन्हें वासना का बिल्कुल दर्शन नहीं कराया जाता था। ब्रह्मचर्याश्रम के बाद फिर गृहस्थ में प्रवेश कराया जाता था। सन्तानोत्पत्ति के लिए ही स्त्री सम्पर्क करता था। शास्त्र का लेख है-

ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदार निरता सदा।
ब्रह्मचारी एव भवति यत्र कुत्र आश्रमे वसन्।।

अर्थात् - जो व्यक्ति ऋतुकाल में सन्तानोत्पत्ति के लिए हीअपनी पत्नी से सम्पर्क करता है अपनी पत्नी में ही प्रेम रखता है वह ब्रह्मचारी ही होता है। पति-पत्नी के अन्दर परस्पर खूब प्रेम होना चाहिये। अपनी स्त्री में प्रेम होने के कारण उसकी शक्ति तत्काल पूरी हो जाती उसकी शक्ति क्षीण नहीं होती है। स्त्रियाँ शक्ति स्वरुपा होती हैं। इनकी प्रसन्नता से तुरन्त शक्ति भर जाती है। जो ब्रह्मचारी होता वह भी अच्छी सन्तान पैदा कर सकता है। उसकी सन्तान का मस्तिष्क का पूरा विकास होता है। ऐसी सन्तान दुनियां का भला करने वाला बन जायेगी। जिसने वासना का दर्शन कर लिया है वासना भोगी हो चुका है उसको जंगल में बिल्कुल नहीं

जाना चाहिए। उसे तो समाज में ही रहना चाहिए। यदि वह जंगल में चला भी जाये तो खाली मन शैतान का घर। वहाँ भी वासना का चिन्तन ही करेगा और पतन होता रहेगा। इसलिए आदर्श ब्रह्मचारी को भी गृहस्थ में ही रहकर साधना करनी चाहिए।

केन्द्र निदेशक : महाराज जी, अन्त में अब एक छोटा सा प्रश्न करूं। आपने योग कहाँ से व किससे सीखा, कहाँ से मार्ग दर्शन मिला और आज इस ऊँचाई तक कैसे पहुँचे?

पूज्य गुरुदेव जी : लल्ला ! मेरे पिता जी बड़े पवित्र विचारों के व्यक्ति थे। उन्होंने बचपन से ही अच्छे संस्कार दिये। मेरी 14–15 वर्ष की अवस्था थी। मैंने एक जगह जाकर 40 दिन अनुष्ठान किया। उसमें मैंने योग विधि से भगवान शिव का चिन्तन किया। भगवान की बड़ी कृपा हुई दिव्य अनुभव हुए। इसके पश्चात् मैं लोगों से पूछता रहा – मुझे कोई योगी गुरु से भेंट करनी है कहाँ मिल सकेंगे। किसी ने कहा मथुरा–वृन्दावन में मिलेंगे। मेरी ऋषिकेश की प्रवृत्ति बनी। मैं ऋषिकेश चला गया। मैं वहाँ घूमते–घूमते योग आश्रम पहुँच गया। योग साधन आश्रम का नाम पहले योग आश्रम था। वहाँ कई योगाश्रम पहले से भी थे। उन्होंने कहा – इनका नाम योगाश्रम नहीं होना चाहिए। फिर इस आश्रम का नाम योग साधन आश्रम रखा गया। वहाँ मुझे मेरे गुरुदेव योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन मिले। उन्हें हम साधारण मनुष्य नहीं मानते हैं। वे एक ही समय में योग विधि से 15–16 शरीर बनाकर योग का प्रचार करते रहे हैं। वे अब भी नेपाल में समाधिस्थ हैं। किन्तु शरीर बनाकर कई जगह योग के ज्ञान को फैलाते रहे। हमारे पास इस प्रकार के अनेक प्रमाण हैं। उन्होंने कई साधु हमारे पास भेजे। एक बार हम काठमान्डू गये। वहाँ एक दिन एक साधु हमारे पास आया और कहने लगा – हमें प्रसाद दे दो। हमने पूछा तुम कहाँ से आये हो? वह कहने लगा हमें तीन दिन पहले दरभंगा में योगिराज जी मिले थे बहुत तेजस्वी मालूम पड़ रहे थे। मैंने उनसे कहा – 'मुझे कृपा प्रसाद दे दो'। उन्होंने कहा – हम तुम्हें प्रसाद नहीं देंगे। हमारा एक बच्चा काठमान्डू में गौशाला में ठहरा हुआ है। तुम उनसे प्रसाद ले लेना। वह तुम्हें प्रसाद दे देंगे। मैंने कहा – उनका नाम बताओ। महात्मा ने कहा उनका नाम महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज है। मैंने उसे प्रसाद दे दिया और वह तुरन्त जंगल में चला गया। मेरे गुरुदेव अमर सिद्धयोगीराज हैं। गोपीचन्द, भर्तृहरि की तरह पूर्ण महासिद्ध हैं। उनकी चरण शरण हमें ऋषिकेश में मिली।

कामाख्या की यात्रा में वसिष्ठाश्रम-दर्शन

– डॉ. विजय सिंह

गोहाटी स्टेशन से मोटरेवल यात्रा वसिष्ठाश्रम तक उपलब्ध है। जगदीशपुर से दो चार किलोमीटर तक सुन्दर–स्वच्छ पहाड़ी शहर की शोभा व चहल–पहल पार कर अचानक बस दोनों ओर घिरे जंगल में से वसिष्ठाश्रम की ओर जा रही है। अमलतास के पीले गुच्छ पूरे वृक्ष को ही आच्छादित कर शोभायमान हो रहे हैं। कहीं गुलाबी (अज्ञात वृक्ष) फूलों से पूरा का पूरा वृक्ष ही विशाल गुलदस्ते का रूप धारण किये हुए है। गोल्डमोहर भी इक्का – दुक्का लाल पुष्पों के गुच्छों से ढका हुआ दिखाई पड़ जाता है। जंगल के अन्दर ताल–तमाल सागौन तथा अज्ञात वृक्षों की सम्पदा सड़क के दोनों ओर हरी भरी दूर दृष्टि तक फैली है।

बस ऐसे ही जंगलों से गुजरता हुआ एक टेकड़ी (छोटी पहाड़ी) के पाद तल पर रुकता है। यहाँ उतर कर कुछ सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद वसिष्ठाश्रम का पूर्व भाग का दर्शन होता है। मंदिर प्राचीन है। प्रस्तर दर प्रस्तर से निर्मित है। आदम कद एक जटाजूट ऋषि (वसिष्ठ जी महाराज) का पत्थर का प्राचीन भव्य मूर्ति पद्मासनासीन ध्यानस्थ बैठा दिखाई पड़ा। उनके सामने एक खड़े मनुष्य की अच्छी ऊँचाई वाला शिवलिंग अवस्थित है। लगता है इस शिवलिंग को ही लक्ष्य कर ऋषि वसिष्ठ का अर्धोन्मिलित दृष्टि एकाग्र है।

मंदिर के पीछे एक वसिष्ठ–गंगा प्रवाह मान है। झरने के रूप में, बड़ा ही हिम शीतल स्वच्छ जल। बड़े–बड़े बोल्डर के अटे–पटे राह से यह जल इधर–उधर से निकल कर पहाड़ी के नीचे की ओर प्रवाह मान है।

एकान्त शिला पर बैठा मेरा मन अतीत एवं इस वर्तमान के तथ्यों में सामन्जस्य खोजने लगता है। सूर्य वंशी राजाओं के कुल गुरु रूप में राजा एवं प्रजा के कल्याणार्थ अपने तप बल, योग बल एवं यज्ञ द्वारा विकट से विकट परिस्थितियों का समाधान किया। अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, अकाल मृत्यु आदि संकटों से लोगों को मुक्त किया। इक्ष्वाकु, निमि से लेकर सगर एवं सगर के साठ हजार पुत्रों का उद्धार हेतु भागीरथ को पृथ्वी पर गंगा जी को लाने की प्रेरणा भगवान वसिष्ठ ने ही दिया। दशरथ जी के निर्वंश होने के दुःख को भी श्रृंगी–ऋषि द्वारा पुत्रेष्टी यज्ञ कराकर स्वयं नारायण पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम तथा उनके परिकर रूप में भरत, शत्रुघ्न एवं लक्ष्मण जी का आविर्भाव कराया था।

कहाँ अयोध्या और कहाँ हजारों किलोमीटर दूर दुर्भर जंगलों के बीच यह रमणीय आश्रम। चित्त इस काल एवं देश तथा पौराणिक कथाओं के मकड़जाल में उलझता गया। परन्तु एक बात मन को खूब भाया वह यह कि 'योग वासिष्ठ' के रचयिता भगवान वसिष्ठ भी भगवान

शिव के आराधक है। यह भव्य विराट शिवलिंग तथा ध्यानस्थ वसिष्ठ जी का प्रस्तर मूर्ति इस बात का प्रबल प्रमाण था।

वसिष्ठ जी की जन्म कथा

योगवासिष्ठ में यह बताया गया है कि सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा जी अपने मानस एवं स्वास के प्रभाव से वसिष्ठ जी को उत्पन्न किये। वसिष्ठ जी उस समय दूसरे ब्रह्मा के रूप एवं तेज से युक्त विद्यमान थे। उन्होंने विनय पूर्वक पूछा – हे प्रभो! मुझे क्यों अपने मानस–बल से उत्पन्न किये हैं? ब्रह्मा जी ने कहा – पुत्र! तुम्हारे अन्दर विद्या–बुद्धि, योग सामर्थ्य, सर्वज्ञता एवं सर्व सिद्धियाँ तुममें विद्यमान हैं अतः तुम भूमण्डल में जाकर मेरे सृष्टि विस्तार में सहायक बनो तथा सूर्यवंशी राजाओं के राजगुरुत्व को निभाते हुए कालान्तर में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के गुरु होने का तुम्हें सौभाग्य प्राप्त होगा।

समाधि में मन्त्रों का दर्शन

आध्यात्मज्ञान योगेश्वर्य तथा सबसे बड़ी बात करुणामूर्ति के रूप में वसिष्ठ जी अग्रगणीय गुरुदेवों में परिगणित हैं।

ऋचाओं का समाधि में दर्शन करके उन्हें जन कल्याणार्थ प्रयोग में लाने वाले ऋषिवर हैं। वसिष्ठ जी ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के द्रष्टा कहे गये हैं।

<u>महामृत्युन्जय मन्त्रः</u>

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।

– ऋक. 7/59/12

इसका साक्षात्कार महर्षि वसिष्ठ जी ने किया और घोर मारक योग को नष्ट करने हेतु भगवान शिव की आराधना इस मंत्र द्वारा अनुष्ठानित होने पर महाकाल प्रसन्न होकर उस प्रारब्ध कष्ट को नष्ट शीघ्र ही कर देते हैं।

उपरोक्त मंत्र का भावार्थ है – हम सभी उस परात्पर भगवान शिव की उपासना करते हैं वे हमारे जीवन को यश की सुगन्धि एवं शक्ति सामर्थ्ता की पुष्टि से युक्त करने वाले हैं। जिस प्रकार पका हुआ फल बिना प्रयास डंठल से अलग हो जाता है, उसी प्रकार हम मृत्यु–भय से सहज मुक्त हों (मृत्यु–पीड़ा दायक न हो) परन्तु हम अमृतत्व से दूर न हों।

इन बातों के स्मरण से चित्त इस समाधान तक पहुँचा कि इस घनघोर एकान्तिक प्रदेश में भगवान शिव की आराधना हेतु से सूर्यवंश के कुल गुरु ने यहाँ आश्रम स्थापित किया होगा। गोस्वामी तुलसीदास ने मानस में स्पष्ट कहा है –

इच्छित फल बिनु सिव आवराधें।
लहिअ न कोटि जोग जप साधें।।

महर्षि वसिष्ठ जी का जीवन शांत एवं परोपकार में निहित दिखाई पड़ता है। श्री विश्वामित्र एवं श्री वसिष्ठ जी का युद्ध की शुरुआत नन्दनी गौ को बलात हरण करने पर प्रारम्भ होता है। विश्वामित्र के तप बल एवं छल बल को इन्होंने अपने ब्रह्मतेज से पराजित किया। उस समय भी जब इनके सौ पुत्रों को विश्वामित्र ने मार डाला इनमें क्रोध लवलेश मात्र भी नहीं रहा। क्षमा धर्म ही इनके स्वभाव में हर विकट से विकट घड़ी में दिखाई पड़ता है।

सूचना

श्री समर्थात् प्रभवे नमः

सभी गुरुभाई बहिनों को सूचित किया जाता है कि हमारे दतिया मण्डल ने 10 नवम्बर से 13 नवम्बर तक का योग प्रचार कार्यक्रम सुनिश्चित कर लिया है। सभी गुरु भाई-बहिन नियत तिथियों व स्थान पर पहुँच कर सत्संग का लाभ उठावें।

कार्यक्रम स्थल : राजेन्द्र भारती (पूर्व एम.एल.ए.) का बाड़ा
मुड़ियन का कुँआ, दतिया (म.प्र.)

निवेदन
अनिल दूबे
मुड़ियन का कुँआ,
दतिया (म.प्र.)

"मेरे श्री गुरुदेव"

– कुँवर ए.के. सिंह, कछवा, मीरजापुर

यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

श्रीमद्भगवतगीता में अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे भारत जब–जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब–तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ।

जब इस संसार में क्रमागत परिवर्तन तथा भिन्न–भिन्न परिस्थितियों के कारण नये–नये सामाजिक शक्ति सामंजस्य की आवश्यकता होती है उस समय एक शक्ति तरंग आती है और मानव जीवन अथवा मनुष्य के आध्यात्मिक तथा भौतिक क्षेत्रों में विचरण करने के कारण इन क्षेत्रों में इस तरंग का प्रभाव पड़ता है। इसी तरंग के रूप में तथा अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण की उक्ति के सार्थक रुप में हरियाणा प्रदेश के एक छोटे से गाँव 'अलुपुर' में शुभ मुहूर्त में परम पावन दिवस विजय दशमी को जन्म लेने वाले इस महान बालक के विषय में कोई कल्पना नहीं कर सकता था कि आने वाले इस युग में एक महान विश्वव्यापी योग मार्तण्ड के रूप में प्रतिष्ठित होकर सारे जग को प्रकाश देगा। ईश सत्ता हमेशा सादगी, पवित्रता, सत्यता एवं सद्चरित्रता में ही प्रतिष्ठित रहती है। आपके श्री पिताश्री प. देवी राम शर्मा एवं माता श्री चरती देवी थीं। पिताश्री दृढ़तम आर्य समाजी विचारों के थे। तथा आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के एक योग्य व कुशल उपदेशक थे।

पवित्र भूमि 'अलुपुर' में अवतरित बालक के साथ अखिलात्मा त्रिजग पावन भगवान श्री कृष्ण बाल रूप में खेलने आया करते थे, इसी खेल–खेल में बालक अपनी माँ से पूछते हैं कि माँ यह छोरा किसका और कहाँ का है तो माँ कहती है बेटा यहाँ तो कोई छोरा–वोरा नहीं है तू बेटा खेल। बालक के सिर पर टोपी में फरगल लगा था तो बालक के साथ खेलते भगवान श्री कृष्ण के टोपी में लगा फरगल साफ सुथरे से तुलना करते हुए अपनी माँ से कहते हैं कि माँ यह छोरा जो मेरे साथ खेलता है उसकी टोपी में लगा फरगल मेरे फरगल से बहुत ही साफ है। माँ कहती है बेटा यहाँ कोई छोरा नहीं आता और तू कैसी बात करता है? यहाँ तो कोई लड़का फरगल नहीं पहनता। माँ को क्या पता कि ये इन महान विभूति के साथ खेलने कौन आता है? इसी तरह बाल्यावस्था उत्तरोत्तर विकास की ओर बढ़ती हुई शिक्षा, दीक्षा, अन्यान्य संस्कार सम्पन्न होते हुए आगे भगवान श्री कृष्ण, भगवान शंकर की अनेकानेक तपश्चर्या करते हुए एव उनसे प्राप्त कृपाओं के फलस्वरूप अन्ततः एक दिन स्वप्न में इन्होंने पगड़ी धारी स्वरूप

अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्री महाप्रभु जी को देखा कि एक कुँए पर डोर से पानी खींचकर तमाम प्यासों को तृप्त कर रहे हैं और इन्हें भी प्यास लगी और जब ये वहाँ पहुँचे तो इन्हें पानी पिलाकर उस पगड़ी धारी महात्मा ने इन्हें वह डोर व बाल्टी थमा दी कि तुम इन प्यासों को तृप्त करो, इनके हाथों में वह डोर व बाल्टी आते ही प्यासों की संख्या अनगिनत बढ़ गई। पुनः दूसरे दिन पुनः स्वप्न देखते हैं कि वही पगड़ी धारी स्वरूप इन्हें अपने पास बुला रहे हैं कि अब तू मेरे पास चला आ। तो इनके द्वारा आने का पता एवं स्थान पूछा जा रहा है। इसी क्रम में क्रमशः आगे व्यतीतानुसार घटनाओं के घटित होते एक दिन इनका 'श्री सिद्धयोग प्रशिक्षण आश्रम, ऋषिकेश पहुँचना एवं वहाँ वही पगड़ी स्वरूप में विराजमान अखिल ब्रह्माण्ड नायक महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज द्वारा हँसकर कहना कि तू आ गया तू तो कहता था कि कहाँ, कैसे और किस पते पर आना है? आगे इसी क्रम में इस बालक को पूर्ण सिद्धयोगी बनाकर अथवा अपने ही स्वरूप को ही इस बालक में स्थापित कर इस धराधाम में पीड़ित जन–समुदायों के जीवन को सार्थक बनाने हेतु भगवान श्री कृष्ण की उक्तवाणी को सार्थक करने हेतु अपने सम्पूर्ण जीवन को लगा दिया ऐसे हैं कर्मयोगी अखिल ब्रह्माण्ड नायक अनन्त विभूषित पूर्ण योग योगेश्वर योग मार्तण्ड श्री चन्द्रमोहन जी महाराज मेरे श्री गुरुदेव!

प्रातः स्मरणीय अनन्त विभूषित अखिलात्मा श्री गुरुदेव जी इन मानव जीव–समुदायों के बीच से निकल कर जंगलों एवं पहाड़ों पर जाने का दृढ़ निश्चय कर ऋषिकेश आश्रम से जब बाहर निकल रहे थे उसी समय पोस्टमैन द्वारा एक लिफाफा का पकड़ाया जाना। जो कि इन्हीं के नाम से था। पत्र में श्री महाप्रभु जी द्वारा आदेश कि चि. तुम जो अपना पैर आश्रम से बाहर निकाल रहे हो उसे वापस कर लो, तुमसे अभी बहुत काम लेना है, चि. हम तो गाँवों–गाँवों बस्तियों में घूम रहे हैं और तुम वनों, पहाड़ों की सोच रहे हो। पत्र पढ़कर श्री गुरुदेव महाराज जी पुनः वापस आश्रम में आकर भारी पश्चाताप किया कि यदि मैं ऐसी गलती कर जाता तो अपने श्री गुरुदेव जी की आज्ञा का कितना बड़ा उल्लंघन होता। ऐसे है अपने श्री गुरुदेव की आज्ञा पालक मेरे श्री गुरुदेव!

इसी क्रम में आनन्दकन्द श्री गुरुदेव जी ने अखण्ड ज्योति महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का अमर सन्देश 'सिद्धयोग' को अपनी अन्तिम साँसों तक गाँवों–गाँवों, शहर–शहर में जन–जन में प्रचारित प्रसारित कर असंख्यों जीवों को मुक्त किया जो अविस्मरणीय है। श्री महाराज जी ने इस 'सिद्धयोग' की मुख्य केन्द्र स्थल का नाम 'श्री सिद्धगुफा' रखा। जो कि वास्तव में श्री महाप्रभु जी का तपस्थली है। श्री गुरुदेव जी ने कहा है 'सारे धरातल में जितने योगाश्रम हैं सभी को किरण अथवा तेज मिलता है तो सिर्फ 'श्री सिद्धगुफा' से।

आनन्दकन्द श्री गुरुदेव महाराज जी त्याग की साकार मूर्ति थे। यद्यपि जो पुरुष, सन्यासी अथवा योगी होता है उसके लिए यह आवश्यक होता है कि सारी सांसारिक सम्पत्ति अथवा यश का त्याग कर दे और इस सिद्धान्त का अक्षरशः पालन करने वाले थे हमारे

पल–पल स्मरणीय श्री गुरुदेव जी।

दूसरे श्री गुरुदेव जी के जीवन का महान तत्व अगाध प्रेम था। भारतवर्ष में भिन्न–भिन्न धार्मिक प्रचारक, संन्यासी अन्यान्य धर्म के लोग दर्शनार्थ आते थे। उन्हें मानव जाति के प्रति अगाध लगाव और प्रेम था कि उनके पास कृपा लाभार्थ आने वाले हजारों–हजार में से अत्यन्त सामान्य मनुष्य भी उस कृपा लाभ से वंचित नहीं रहता था।

इसी क्रम में मेरे श्री गुरुदेव भगवान जो त्याग एवं सादगी की साकार मूर्ति थे। जिन्हें भारतवर्ष के महान योगी आदरणीय श्री देवराहा बाबा ने कहा था –

मेरे आराध्य आ गये, मेरे ऐश्वर्य आ गये।' और आगे पुनः कहा कि 'आप इस वेशभूषा में अपने को इन मानव–समुदाय के बीच में कैसे बनाये हुए हो, यह हम सब योगियों के बीच में महान आश्चर्य का विषय है।' यह उक्ति श्री महाराज के सादे वेश भूषा एवं रहन–सहन का परिभाषित करती है।

योग विद्या के अमरतत्व को प्रकाशित कर मेरे श्री गुरुदेव जी ने हम सब मानव के जीवन को धन्य बना दिया। योग के सैद्धान्तिक एवं क्रियात्मक पक्ष दोनों का ही महत्व श्री गुरुदेव जी ने अपने मुखारविन्दों से समझाया है। आपने हमेशा ही ध्यान योग की क्रियात्मकता पर बल दिया है। इसलिए ध्यान योग की महिमा सर्वोपरि है। गुरु उपदिष्ट होकर साधना करने से ही सफलता मिलती है। यदि हम गुरुपदिष्ट होकर ठीक प्रकार साधना करें तो योग की एक क्रिया ही पराकाष्ठा पर पहुँचा देती है।

अन्ततः आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के पावन जन्म दिवस पर उन्हीं के युगल चरण–कमलों में इन्हीं शब्दों के साथ कोटिशः नमन्–

पातंजलि के सूत्र तुम्हारी। चर्चा के अभितन्त्र बने।।

गीता के उद्घोष तुम्हारे। जीवन के अभितन्त्र बने।।

'सिद्धयोग' के व्याख्याता तुम। ऋद्धि सिद्धि के दाता हो।।

स्वयं सिद्ध हो परम पुरुष हो। ज्ञेय ज्ञान अरु ज्ञाता हो।।

'जन्म दिवस' की यह वर बेला। सब वसुधा को सुखमय हो।।

'सिद्धगुफा' के सन्त तुम्हारी। जय हो जय हो जय-जय हो।।

श्रीगीतामृत - पदावली

प्रेषक – रुद्रदत्त चतुर्वेदी

अध्याय – 9

श्री भगवानुवाच

दोष–दृष्टि से रहित तुम्हें मैं कहता ज्ञान तथा विज्ञान।
पाप–मुक्त हो जाओगे, जब इस रहस्य को लोगे जान।।1।।

राज–भेद, विद्या सर्वोत्तम, पावन श्रेय इसे जानो।
सुलभ तथा प्रत्यक्ष बोध यह, धार्मिक, अमर इसे मानो।।2।।

जिसे नहीं है श्रद्धा इसमें, कभी न वह मुझको पाता।
मुझे नहीं पाकर वह अर्जुन! मृत्यु–लोक में फिर आता।।3।।

सारे जग को व्याप्त किया है, मेरा रूप पार्थ! अव्यक्त,
मुझमें ही हैं भूत–मात्र सब, किन्तु न हूँ मैं उनमें भक्त।।4।।

देखो ईश्वरीय मम माया, मुझमें कोई भूत नहीं।
भूतों का स्रष्टा औ' पालक, भूत–स्थित मैं नहीं कहीं।।5।।

सभी स्थान में बहने वाला, यथा गगन में पवन महान्।
स्थित मुझमें तू भूत–मात्र को, उसी भाँति हे अर्जुन! जान।।6।।

होता है जब अन्त कल्प का, मुझमें मिल जाता संसार।
नया कल्प जब आता, तब मैं करता पुनः सृष्टि–विस्तार।।7।।

प्रकृति स्वकीय ग्रहण कर, जग का पुनः-पुनः करता निर्मान।
सदा विवश इस भूत-मात्र को, उसी प्रकृति के वश तू जान।।8।।

बाँध न सकते मुझे कभी भी, हे अर्जुन! ये कर्म सभी ।
उदासीन मैं रहता संतत, नहीं कर्म में लीन कभी।।9।।

प्रकृति अधीन हमारे करती अचर तथा चर का निर्मान।
इसी हेतु होता, कुन्तीसुत! परिवर्तन जग का, तू जान।।10।।

मुझे जान मानव-तन-धारी, मूढ़ पुरुष करते अपमान।
परम भाव मम भूत-महेश्वर का उनको है तनिक न ज्ञान।।11।।

उनके सभी निरर्थक हैं ये, आशा, कर्म, बुद्धि औ' ज्ञान।
मोहात्मक सब भाव राक्षसी, तथा आसुरी उनके जान।।12।।

किन्तु प्रकृति दैवी में आश्रित, हे अर्जुन! कुछ पुरुष महान्।
भजते मुझे अनन्य भाव से, आदि जगत् का मुझको मान।।13।।

दृढ़ मन से ये कीर्तन करते, ध्यान सदा मेरा धरते।
करते सदा वंदना मेरी, योग-युक्त पूजन करते।।14।।

ज्ञान-यज्ञ से तथा दूसरे, करते हैं मेरा अर्चन।
पृथक् और एकत्व भाव से करते हैं मेरा पूजन।।15।।

स्मृति-श्रुति-विहित यज्ञ सब मैं हूँ, स्वधा, हविष्य मुझे जानो।
घृत हूँ, अनल तथा आहुति हूँ, हवन मंत्र मुझको मानो।।16।।

मैं ही जगत्-पिता-माता हूँ, तथा पितामह जगदाधार।
यजुः, साम, ऋक् मुझको जानो, मैं हूँ ज्ञेय पवित्रोंकार।।17।।

मैं हूँ गति, प्रभु, पोषक, साक्षी, शरण, सुहृद औ' वास स्थान।
प्रभव, प्रलय हूँ, अमर बीज हूँ, सबका हूँ आधार, निधान।।18।।

वर्षा करता और रोकता, मैं ही तो देता हूँ ताप।
अमृत, मृत्यु मुझको ही जानो, हूँ सत् और असत् मैं आप।।19।।

वेद-विहित कर्मों के कर्ता, सोम-पान करते जो लोग।
स्वर्गति प्रार्थी यज्ञ-यजन से, पुण्य कमा, पाते सुर-भोग।।20।।

स्वर्ग भोगकर वे फिर आते, पुण्य क्षीण जब हो जाते।
श्रौतधर्म-पालक, अभिलाषी, बार-बार आते-जाते।।21।।

जो अनन्य है मेरा पूजक, सदा ध्यान मेरा धरता।
योग-युक्त उस नर का, अर्जुन! योगक्षेम मैं ही करता।।22।।

और दूसरे देवों के भी, जो हैं श्रद्धावाले भक्त।
विधि-विरुद्ध वे भी कुन्तीसुत! मुझ में ही होते अनुरक्त।।23।।

मैं ही यज्ञों का स्वामी हूँ, करता मैं ही उनका भोग।
मुझे तत्वतः नहीं जानकर, गिर जाते अज्ञानी लोग।।24।।

देव-लोक देवार्चक जाते, पितर-भक्त पितरों के पास।
भूत-भक्त भूतों में मिलते, मम भक्तों का मुझ में वास।।25।।

पत्र, पुष्प, फल या जल ही जो भक्ति सहित मुझको देता।
शुद्ध चित्त से अर्पित उसको, हे अर्जुन! मैं ले लेता।।26।।

जो कुछ करो, दान दो, खाओ, करो हवन, पूजा, तर्पण।
तथा करो जो तप, हे अर्जुन! सबको करो मुझे अर्पण।।27।।

कर्मों के शुभ–अशुभ फलों के, बंधन से छुट जाओगे।
युक्तचित्त सन्यास–योग से, मुक्त, मुझे यों पाओगे।।28।।

नहीं मुझे अप्रिय, प्रिय कोई, सबको मैं हूं एक समान।
भक्ति–सहित जो भजते, उनमें मैं हूं, वे मुझमें–तू जान।।29।।

भक्ति अनन्य–सहित यदि मुझको, दुर्जन भी भजता है, तात।
है उत्तम निश्चय उसका, वह साधु पुरुष होता है ज्ञात।।30।।

शीघ्र धर्मयुत वह हो जाता, नित्य शांति भी पा जाता।
निश्चय जानो, भक्त हमारा, नष्ट नहीं होने पाता।।31।।

पापी जन भी यदि हे अर्जुन! आश्रय में मेरे आते।
नारी, वैश्य, शूद्र–ये सब भी, सर्वोत्तम गति पा जाते।।32।।

पुण्यवान्, ब्राह्मण, ऋषिगण की, तथा भक्त की फिर क्या बात।
इस क्षणभंगुर, दुखमय जग में, आकर भजो मुझे तुम तात।।33।।

भक्त बनो मम, मुझमें मन दो, मुझको पूजो, करो प्रणाम।
मुझमें ही रत रहा करो तुम, करो योग, पाओ मम धाम।।34।।

('श्री गीतामृत–पदावली' का राजविद्या–राजगुह्य–योग नामक नवाँ अध्याय पूर्ण)

योग

प्रेषक – श्रीमती सुमन कुराना, हरियाणा

योग का अर्थ है 'जोड़'। जीवात्मा व परमात्मा के मिलन को योग कहा जाता है। अब प्रश्न उठता है जीवात्मा को परमात्मा का दर्शन कैसे हो?

सर्वप्रथम मनुष्य एक कुशल किसान की भाँति अपने मन के समस्त विकारों को दूर करने का सफल प्रयास करे। जैसे किसान खेत में बीज बोने से पहले अपनी भूमि के सभी विकार नष्ट करता है और उसके बाद अच्छा बीज बोता है, पूर्ण परिश्रम के साथ उसे सींचता व देखभाल करता है तभी वह अच्छी फसल पाने का अधिकारी बन पाता है। ठीक उसी प्रकार मनुष्य भी अपने मन की कुशलता से जाँच करे कि इसमें कहीं ईर्ष्या, घृणा, क्रोध, मद, लोभ, दम्भ, मोह आदि जो मन के विकार हैं, विद्यमान तो नहीं हैं क्योंकि एक भी विकार मनुष्य को योग परायण बनने में बाधा पैदा करता है, उपर्युक्त विकारों को नष्ट करने के बाद ही मनुष्य योग परायण हो पाता है।

1. ईर्ष्या – ईर्ष्या (जलन)। ईर्ष्या मनुष्य का सबसे बड़ा अवगुण है। यह जंगल में लगी एक पेड़ की आग के समान है, जो सम्पूर्ण जंगल को जला कर राख कर देती है। ईर्ष्यालु प्रवृत्ति वाला व्यक्ति कभी भी योग मार्ग पर अग्रसर नहीं हो पाता। अतः मनुष्य को इस विकार से बचने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

2. घृणा – घृणा (नफरत)। दूसरों से घृणा करने वाला जीव कहीं आदर नहीं पाता। इसलिए जीवात्मा को चाहिए कि यदि उसके मन में किसी के प्रति घृणा का भाव है तो वह उसे प्रेम में बदल दे। क्योंकि प्रभु को प्रेम से ही पाया जा सकता है। हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिस–जिस ने प्रभु को पाया है, भगवत दर्शन किया है 'प्रेम' से ही किया है। भगवान प्रेम व भावों के भूखे हैं अतः अपने मन से नफरत के भाव मिटाकर प्रेम से भगवान की शरणागत हो जाना चाहिए।

3. क्रोध – क्रोध मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। क्रोध का मूल कारण है मानव मन से उठने वाली 'प्रबल इच्छा' जब मनुष्य की मन मुताबिक कामनाएँ पूर्ण नहीं हो पाती हैं, तब मनुष्य को क्रोध सताने लगता है। क्रोध में मनुष्य की उचित व अनुचित का निर्णय करने की शक्ति छिन जाती है। शरीर का रक्तचाप बढ़ जाता है। व्यक्ति मानसिक रूप से परेशान रहने लगता है। क्रोध एक जहरीले नाग की तरह है जिसका तन व मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए मनुष्य को क्रोध छोड़कर शीलवन्त बनने का सफल प्रयास करना चाहिए और सदैव स्मरण रखना चाहिए कि –

शीलवन्त सबसे बड़ा सब रत्नों की खान।
तीन लोक की सम्पदा, बसी शील में आन।।

4. मद – मद (घमण्ड) यह कई प्रकार का होता है। पद का, धन का, सांसारिक सुख सुविधाओं का। जब तक जीव के अन्दर किसी भी प्रकार का मद रहेगा तब तक वह 'प्रभु दर्शन' से वंचित रहेगा। इसलिए मनुष्य को अपने हर पद के मद को भुलाकर एक दास की भाँति प्रभु चरणों की सेवा में लीन रहना चाहिए। अपने मन को हर पल प्रभु के गुणगान में लगाए रखना चाहिए। गुरुदेव भी अक्सर समझाते हैं कि –

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

भगवान उसी मन में निवास करना पसन्द करते हैं जहाँ किसी भी प्रकार का कोई विकार नहीं होता। अत: अपवने मन को एक बच्चे की भांति निर्मल रखते हुए प्रीतिपूर्वक प्रभु का भजन करते रहना चाहिए।

5. इच्छा – इच्छा कभी पूर्ण नहीं होती। जीव के मन में एक के बाद एक इच्छा जागृत होती रहती है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी कुशलता का परिचय देते हुए अपनी समस्त इच्छाओं का दमन करके 'प्रभु मिलन' की इच्छा को ही सर्वोपरि समझे और स्वयं को प्रभु चरणों में समर्पित कर दे। मानव मन असीम शक्तियों का भण्डार है। कहा भी गया है कि –

मन के हारे हार है और मन के जीते जीत।
परमात्म को पाइये मन ही के प्रतीत।।

मनुष्य को भलीभांति समझ जाना चाहिए कि सांसारिक सुख–सुविधाओं की इच्छा तो क्षणभंगुर है शाश्वत सुख तो सच्चिदानन्दघन परम पिता परमात्मा की प्राप्ति है।

6. मोह – मोह (ममता)। सांसारिक जीव मोह माया के बंधनों में उलझा रहता है। संसार में रह कर इन बंधनो से छूट पाना असम्भव सा प्रतीत होता है परंतु यदि मनुष्य निरन्तर अभ्यास करे तो कठिन कार्य भी सरल हो जाया करता है। उदाहरण स्वरूप –

अतिशय रगड़ करे जो कोई अनल प्रकट चन्दन से होई।।

नियमित रूप से भगवान का भजन व ध्यान करें प्रभु के गुणों का गुणगान करें। जितना प्यार भगवान से करें उतना ही प्यार अपने गुरुदेव से करें। गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा रखें। उनके वचनों में अटूट विश्वास रखें। उनके बताए मार्ग पर चलें। गुरुदेव द्वारा बताए गए नियमों का पालन करें। सब्र व शान्ति का आभूषण धारण करें फिर भी यदि मोह रखना ही है तो केवल प्रभु मिलन का ही मोह रखें। तभी कुछ हो सकता है।

मैं मेरा छोड़ दे मत लेश भी अभिमान कर,
उनको नियन्ता जानकर गुरुदेव का ही ध्यान कर,

मत मान कर्ता खुद को करतार गुरुवर जान ले

खुल जाएँगे मोक्ष द्वारे मन में सत्य मान ले।

इसलिए अब हम यही कहना चाहते है कि कहने सुनने से काम नहीं चलता करके देखिए 'प्रभु प्रेम' एक चुम्बक की भांति है। जो प्राणी प्रभु से प्रेम करता है प्रभु उसे स्वयं अपनी ओर आकर्षित करते हैं और सांसारिक भव बंधनों से मुक्त रखते है क्योंकि भगवान मन की सुन्दरता से प्यार करते हैं। आज तक जिसने अपना सर्वस्व प्रभु को समर्पित किया है वह किसी सुख से वंचित नहीं रहा। इसलिए प्रभु को दिल से पुकारो प्रभु दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे।

मेरे परम पूजनीय गुरुदेव भगवान के पावन चरण कमलों में मेरा कोटि–कोटि प्रणाम ।

सूचना

श्री रामलाल प्रभवे नमः

सभी गुरुभाई बहिनों को सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि हमारे शहर वाराणसी में दिनांक 16 दिसम्बर से 19 दिसम्बर तक आचार्य दासलाल जी के यौगिक संरक्षण में एक योग शिविर सत्संग का कार्यक्रम सुनिश्चित हुआ है। सभी गुरुभाई–बहिनों से निवेदन है कि नियत तिथियों में आकर सत्संग का लाभ लें।

कार्यक्रम स्थल : पटेल धर्मशाला (सिंह डाइग्नोज सेन्टर) नदेसर, वाराणसी (कैन्ट स्टेशन के सामने ही)

निवेदक

योग प्रचार मण्डल

वाराणसी

श्री प्रभु कृपालीला

– जगदीश राय बंसल 'अधम'

योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा सवांई धाम से सम्बन्धित हमारे एक आदरणीय साधक गुरु भाई जी का नाम श्री रघुराज है। मूल रूप से श्री रघुराज इसी भाग्यशाली गाँव सवांई के रहने वाले हैं। वर्षो से अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की चरण–शरण में रहने के कारण आदरणीय भाई जी को गाने बजाने एवं कथावार्ता का पुराना आशीर्वाद प्राप्त है। अकारण दयालु, अनाथ नाथ की श्री रघुराज पर अनेकानेक कृपाएँ हैं। जो भाई जी की भरी मुस्कान में ही झांक रही हैं। फिर भी प्रसंग वश एक गुरु कृपा श्री रघुराज जी ने अपनी बहिन से सम्बन्धित दिनांक 4 मार्च 2010 को श्री सिद्धगुफा प्रांगण में जगतात्मा त्रिजग पावन भगवान श्री कृष्ण की कथा के पश्चात् सुनाई। जिसका भाई जी के ही शब्दों में लिखने का प्रयास किया जा रहा है।

यह कृपा प्रसंग सन् 1959 का है। मेरी एक लाडली बहिन का नाम शारदा है। शारदा बहिन का विवाह खुर्जा निवासी श्री राम सिंह के साथ बड़े लाड़–प्यार से किया था। शादी होने के पश्चात् कुछ समय तो शारदा बहिन का बहुत आराम से बीता। मगर समयानुसार कोई सन्तान न होने के कारण बहिन जी को बच्चे की इच्छा सताने लगी। हर समय स्वयं में दीन हीन बन कर रहने लगी। अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक दादा गुरु श्री रामलाल जी महाराज एवं गुरुदेव योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महा .ज के श्री चरणों में आर्त पुकार करती रहती कि मैं कब माँ बनूंगी? कब घर किलकारियों से गूंजेगा? कब लाला को आंचल में सहलाऊंगी?..... आदि। इस प्रकार कभी–कभी एकान्त में अपना मन हल्का भी कर लेती। कभी श्री प्रभू जी के प्रति अपने भाव गुनगुना लेती कि :

श्री सिद्धगुफा का चोला मैंने ओढ़ लिया।
अपना जीवन श्री चरणों में जोड़ दिया।।

कैसे तुझे रिझाऊं, जो एक ललना पा जाऊँ
मैं आर्त पुकार लगाऊं, बार–बार याद दिलाऊँ
आंचल फैला ही दिया।
अपना जीवन ....

गुफा वाले बाबा, मेरे सोए भाग जगा दे
एक हँसता लाल देकर, घर में दीप जला दे

शरणा पकड़ ही लिया।

अपना जीवन...

एक ही अर्जी है दाता, मुझे इन्कार न करना
मैं शरण में तेरी बाबा, मेरे प्राण मत हरना
अपनी डोरी सौंप दिया।
अपना जीवन...

पल–पल के रक्षक परम योग योगेश्वर, सिद्धों के सम्राट भाग्य विधाता ने शारदा बहिन की प्रार्थना स्वीकार की।

हुआ शारदा का भाग्य सवाया, दिन शुभ मिलन का आया

बात इस प्रकार बनी कि एक प्रातः भोर में बहिन शारदा सैर करने के लिए घर से निकली। यकायक मकान के सामने खड़े वृक्ष की तरफ से आवाज आई कि 'लल्ली शारदा! इधर आ, मुझे पहचानती नहीं? मुझ से बोलती नहीं?' बहन शारदा अचम्भित सी उधर बढ़ी कि ये रस भरी वाणी कौन पुकार रहा है? और आगे बढ़ कर देखती है कि एक जटा धारी चिमटा लिए वृक्ष के चबूतरे पर विराजमान है। आश्चर्य! ये तो गुफा वाले बाबा गुरुदेव जी महाराज हैं। बहिन शारदा ने प्रणाम किया। सर्व शक्तिमान, भागवन्ति नन्दन, परम योग योगेश्वर सिद्ध शिरोमणी, महाप्रभू श्री रामलाल जी महाराज ने वहीं से चरण रज उठा कर भाग्यशाली शारदा को देते हुए कहा कि 'लल्ली तुझे सन्तान चाहिए ना! ये ले रज खा लेना और अब चिन्ता मत करना। और हाँ लल्ली! तूने मुझे चाय भी भी नहीं पूछी!' बहन शारदा कुछ सकुचाई और करबद्ध प्रार्थना की कि महाराज जी आईए घर पधारिए, दूध / चाय अभी तैयार कर देती हूं। शारदा की यह प्रार्थना सुन कर जगत नियन्ता महाराज जी उठे। आदरणीया बहिन शारदा आगे–आगे और त्रिलोकी नाथ महाप्रभु जी पीछे–पीछे चले। बहिन शारदा ने घर में प्रवेश किया और जैसे ही मुड़ कर देखने लगी, घट–घट पट–पट के स्वामी अन्तर्धान हो चुके थे। बहिन शारदा रज प्रसाद पा कर तो इतनी खुश हुई कि चातक स्वाति का जल पा गई। मगर चराचर के स्वामी दादा गुरु जी अन्तर्ध्यान होने से इतनी दुःखी कि जैसे चन्द्रमा अस्त होने पर चकोर।

शारदा गा कर गीत विरह के, वेगवती चलती जाती है।
दिल हल्का कर लेने को, उपलों से कुछ कह जाती है।।

समय अवधि के अनुरूप शारदा को सुन्दर पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। आराध्यदेव परम करुणा निकेतन, त्रिजग पावन का जय–जय कार हुआ। घर खुशियों से भर गया। बधाईयों का तांता सा लग गया।

बधाई हो बधाई, हम माँग रही मिठाई।
गुरुदेव की दुहाई, बाज रही शहनाई।।

समय के साथ–साथ होनहार नट–खट बच्चा जिसका नाम राज कुमार उर्फराजू रखा गया, बढ़ता गया। एक बार शारदा हमारे घर सवाई आई हुई थी। उस समय मेरा प्रिय भानजा राजू छः वर्ष का रहा होगा। एक दिन बड़ी विलक्षण घटना घटी। घटना के दिन मैं आश्रम से दिन का भोजन करने के लिए घर पहुँचा, तो घर पर कोहराम मचा हुआ था। प्रिय राजू का देहान्त हो गया। घर में किसी को स्वयं की सुध न थी। विशेष कर मेरी धर्मपत्नी का विलाप, उपस्थित भीड़ पर भारी पड़ रहा था। जो पंक्तिबद्ध इस प्रकार है–

रे राजू बेटा तेरा ये हाल
मामी कह कर बोल मेरे लाल।।

सिर फोड़ कर मर जाऊंगी
जलती चिता में कूद जाऊंगी
हे गुरु चन्द्रमोहन करतार।।
मामी कह...

मारना था तो 'खुर्जा' मर जाता
हमको यहाँ ना कलंकित करता
क्यों दिया था प्रसाद।
मामी कह...

गुरुदेव इसके प्राण लौटा दो
मेरी चिता को विराम लगा दो
हे सिद्ध ुफा सरकार।
मामी कह...

जब मैंने और उपस्थित भाई लोगों ने उदासीन महिलाओं को कुछ सान्तवना देने का प्रयास किया तो मेरी घर वाली अविरल अश्रुधारा बहाते हुए मेरा हाथ पकड़ कर आक्रोश से बोली कि ले जाओ इसे, सौंप दो उसीको जिसने यह दिया था। कह दो उसे मारना ही था तो शारदा को प्रसाद क्यों दिया था? और इसे मरना ही था तो अपने घर खुर्जा मर जाता। हमारी देहरी को कलंकित न करता और गुरु जी अब इसे प्राण दान दीजिए, अन्यथा एक नहीं दो चिताएँ जलेंगी।' यह बातें सुन कर मैं राजू के मृत शरीर को एक कम्बल में लपेट कर यहाँ आश्रम में ले आया और उधर देखिए, पत्रिका कार्यालय की तरफ कमरा नम्बर 1 और कमरा नम्बर दो के सामने जो दो वृक्ष हैं उनके मध्य राजू के मृत शरीर को लिटा दिया। त्रिकालदर्शी गुरुदेव जी महाराज दिन का भोजन कर चुके थे। मैंने श्री चरणों में स्थिति से अवगत कराया एवं अपनी धर्मपत्नी द्वारा कही गई उपरोक्त तीनों बातें भी कह डालीं। श्री मुख ने पूछा कि और क्या कहा तुम्हारी धर्मपत्नी ने? प्रतुत्तर में, मैं तो बस श्री चरणों में गिर गया।

आ गई लहर शिवा के मन में

काल चक्र, युग चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले गुरुदेव जी महाराज ने आज्ञात्मक शब्दों में कहा कि 'लल्ला मैं अपने कमरे में जाता हूँ, जब तक मैं दरवाजा न खोलूं, दरवाजे की तरफ चिड़िया भी पर ना मार पाए। इस बात का कड़ाई से पालन हो।' यह आदेश देकर शरणागत रक्षक गुरुदेव भगवान अपने कक्ष में चले गए और अन्दर से कुण्डी बन्द कर ली। इधर मैं स्वयं पहरे पर तैनात हो गया। अब लीला धारी की लीला देखिए कि उस दिन बहुत दर्शनार्थी एवं साधक आए। कई आगन्तुक तो मुझ से नाराज हो कर लौट गए। कुछ इन्तजार में वहीं बैठ गए। कोई–कोई वापिस जा कर पुन: लौट आए। बहुत देर पश्चात् सायंकाल के समय जगत नियन्ता ने दरवाजा खोला। जिज्ञासु चरण स्पर्श के लिए उमड़ पड़े। मगर आराध्यदेव जी महाराज ने अपनी ओजस्वी वाणी से कहा, देखो, मुझे कोई नहीं छुएगा, वहीं रहो, पहले मैं स्नान करूंगा, फिर आरती करूंगा, उसके बाद बैठूंगा।' तत्पश्चात् एक आदरणीय ब्रह्मचारी जी को आरती की तैयारी का आदेश दे कर स्वयं स्नान के लिए चले गए।

इस प्रकार शीघ्र स्नान से लौटते ही अखण्ड कोटि ब्रह्माण्ड नायक गुरुदेव भगवान ने तुरन्त आरती की और आरती जल लेकर राजू के मृत शरीर पर डाला। आरती जल डालते ही राजू की सांस चल पड़ी एवं एक हिचकी आई। अब अन्तर्यामी जी ने चम्मच से राजू के मुख में आरती जल डाला। इस बार राजू उठ बैठा और प्राणदाताजी से आरती जल वाले गिलास को स्वयं लेकर सारा अमृत जल पी लिया। जल पीते ही बोला, 'मामा घर चलो।' बोलिए:

गुरुदेव जय–जय, सद्गुरु जय–जय।
अखण्ड ज्योति प्रभू राम लाल जय–जय।।

इस प्रकार देवाधिदेव महादेव जगतपति जनार्दन गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने आरती जल द्वारा राजू को प्राणदान दिया। इस समय 4–5 बच्चों के पिता श्री राज कुमार जी (राजू) त्रिलोक पावन स्वयं नारायण गुरु जी की कृपा से रेलवे में करोड़ों के ठेकेदार है।

गुरु ब्रंहा, गुरु विष्णु, गुरु साक्षात् महेश्वर:।
गुरुदेव परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नम:।।

क्षेत्रमित्यभिधीयते

– पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय, प्रवक्ता संस्कृत, गोरखपुर

मनुष्य योनि सर्वश्रेष्ठ योनि है। जीव के आत्म कल्याण का समस्त कार्य इसी से हो सकता है। आध्यात्म जगत में शरीर को 'क्षेत्र' माना गया है। योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने कहा– हे अर्जुन यह शरीर क्षेत्र तथा इसको जो तत्त्वः जानता है। उसको क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। यहाँ क्षेत्र आत्म तत्व तथा क्षेत्रज्ञ परमात्मा तत्व दोनों को अपना ही रूप बताते हुए कहा कि – इन दोनों को तत्त्वः जानता है। वास्तव में वही सिद्ध साधक है। योगेश्वर भगवान कृष्ण के अनुसार व्यक्ति को अपने को ही जानना बड़ा कठिन सा प्रतीत होता है। इसका तात्पर्य साधक ज्ञान से बहुत दूर दिखता है। तुलसीदास जी ने कहा – 'जे जानइ जेहि देई जनाई' अर्थात् अपने को भी वही साधक जान सकता है, जिसको वह परमात्मा ज्ञान करा देते हैं। गुरुदेव की वह अमोघ वाणी आज याद पड़ रही है। जब वह स्वयं योगेश्वर की तरह गम्भीर मुद्रा में कहा करते थे कि अपने गुरुदेव को जानो ऐसे काल में मैंने स्वयं देखा कि अपने सीने पर हाथ रखकर कहते थे, तथा सामने बैठे साधक समुदाय की ओर संकेत करते हुए कहते थे कि अपने गुरुदेव के साथ ही स्वयं को जानो। गुरुदेव की वह अमोघ वाणी शायद समझ में नहीं आया अथवा प्रमाद वश बताये गये नियम के अनुसार साधन नहीं किया गया। जिससे अज्ञानता बनी रही। गीता में भगवान ने इसको बताते हुए कहा –

ऋषि भिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक।
ब्रह्मसूत्र पदैश्चैव हेतुमभिर्विनिश्चितैः।।

अर्थात् इस क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के बारे में ऋषियों तथा विविध वेदमन्त्रों द्वारा भी अनेक प्रकार से बताया गया है तथा ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा भी कहा गया है।

वास्तव में इस क्षेत्र को समझने में विभिन्न प्रकार की बाधाएँ हैं, जिसे विकार कहा गया है। समस्त विकार जब तक व्यक्ति के समाप्त नहीं होंगे शायद तब तक इसका सम्यक् ज्ञान हो पाना कठिन है। भगवान ने बड़े स्पष्ट रूप से बताया कि ऐसा साधक जिसमें विभिन्न कुवृत्तियों का अभाव हो वही शायद योग्य मानक के अनुसार ही क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को समझ सकता है।

अमानित्व दम्भित्वमहिंसा क्षान्ति रार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्म विनिग्रहः।।
इन्द्रियार्थेसु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधि दुःख दोषानुदर्शनम्।।

असक्तिरनभिष्वङ्ग पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्व मिष्टानिष्टोपपात्तिषु।।

अर्थात् हे अर्जुन ऐसा पुरुष जिसमें अभिमान दम्भाचरण, प्राणियों पर दया वृत्ति, भगवान मन वाणी से शुद्ध अन्तःकरण वाला, श्रद्धा एवं भक्ति के साथ गुरु की सेवा करने वाला, शरीर से अन्तः तथा बाह्य की पवित्रता रखने वाला होना चाहिए। मन तथा इन्द्रियों सहित शरीर का निग्रह करने वाला होना चाहिए। भोगों में भी किसी प्रकार की आसक्ति नहीं होनी चाहिए। उपनिषद् वाक्य भी है – **'तेन व्यक्तेन भुञ्जीथा'**। व्यक्ति को जन्म, मृत्यु, जरा और रोग के समय उससे उत्पन्न कष्टों और दोषों का विचार करना। उसके अतिरिक्त पुत्र, स्त्री, घर और धन आदि में भी अत्यधिक आसक्ति का न होना, ममता का न होना तथा जीवन में प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में चित्त का सम रहना अर्थात् व्यक्ति को सुख एवं दुःख में किसी प्रकार भी विचलित नहीं होना।

उपर्युक्त विचारों की सम्यक् धारणा करने वाला व्यक्ति ही इस क्षेत्र अर्थात् अपने शरीर के बारे में जान पायेगा। इसका तात्पर्य है कि व्यक्ति अपने को ही नहीं पहचान पाता तो ईश्वर के बारे में कैसे जान पायेगा। हमारे सिद्धगुफा सवाई से संबंधित साधक निश्चय ही सद्गुरु के शक्तिपात दीक्षा को प्राप्त कर तथा सद्गुरु के बताये सद्मार्ग पर चलकर निश्चय ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर रहे हैं। वैसे युग का सामान्य प्रभाव किसी व्यक्ति पर न पड़े ऐसा नहीं हो सकता है फिर भी यदि साधक गुरुदेव के सुने गये उपदेश उनसे सुनी गयी वार्ता का निरन्तर चिन्तन करता रहता है तो निश्चय ही क्षेत्र के साथ उस क्षेत्रज्ञ के बारे में भी जान लेता है। कबीर साहब की पदावली का अवलोकन करें तो उसका और खुलासा होगा। उन्होंने आत्मा और परमात्मा क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को इस प्रकार बताया है कि –

काहे रे नलिनी तू कुम्हिलानी
तेरे ही नाली सरोवर पानी, जल में उत्पत्ति
जल में वास जल में नलिनी तोर निवास
तोरे हेतु कहु कासनि लागि।

यहाँ कबीर ने नलिनी को आत्मा (क्षेत्र) तथा सरोवर पानी परमात्मा (क्षेत्रज्ञ) को बताते हुए कहा कि जब तुम्हारा संबंध परमात्मा से है तो भी तू कुम्हिला गयी आगे उन्होंने इसका निदान भी बताया कि लगता है तुम्हारा संबंध किसी और से हो गया है अर्थात् तुम्हारे अन्दर विकारों ने घर बना लिया है। इसलिए तू भटक गया है। यदि इन षड विकारों पर नियंत्रण करो तो निश्चय ही दोनों का सही साक्षात्कार हो सकता है।

साधक को क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को जानने के लिए और विद्या बताते हुए योग योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने कहा कि 'अनन्य योगन भक्ति व्यक्ति चारिणी' अर्थात् साधक को अनन्य

भोग जिसका तात्पर्य योग से किसी भी प्रकार से न हटकर जो सर्वशक्तिमान परमेश्वर को ही अपना सब कुछ मानकर श्रद्धा एवं निष्ठा के साथ निरन्तर चिन्तन करता है। ऐसा साधक इस कोटि का भक्त हो सकता है– योग दर्शन में सूत्र है–

'सतु दीर्घ काल नैरन्तर्य सत्कार सेविता दृढ़ि भूमि'

साधन की दृढ़ भूमि ईश्वर के प्रति तब होगी, जब वह लम्बे समय तक दृढ़ता के साथ उस क्षेज्ञत्र को जानने का प्रयास करेगा तब उसे उसका ज्ञान अवश्य हो जायेगा। जैसे विद्यार्थी निरन्तर दो वर्ष के लम्बे परिश्रम के फलस्वरूप इण्टर, बी.ए., एम.ए. की डिग्री प्राप्त करते हैं उसी प्रकार साधनरत क्षेत्री अपने क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को प्राप्त कर सकता है।

उस क्षेत्रज्ञ का स्वरूप कैसा है? उसको भी जानना जरूरी है। वह हाथ पैर, नेत्र, सिर, मुख तथा कान वाला होकर समस्त जीवधारी जैसा संसार को व्याप्त कर रहा है। सबका पूरी तरह से भरण–पोषण करने वाला भी है। सगुण तथा निर्गुण दोनों रूपों से युक्त समीप होते हुए भी दूर जैसा दिखता है। वह व्यक्ति के ह्रदय में कस्तूरी की तरह है। साधक बाह्य वृत्तियों वाला होने से वह सांसारिक वृत्तियों में लगा रहता है। इसलिए वह भ्रमित होता रहता है। जब समस्त कार्य पूर्व निर्धारित हैं तब व्यक्ति को स्वाभाविक रूप से कार्य करने की आवश्यकता होती है।

कार्य करते–करते व्यक्ति यदि कदाचित सफलता न पाने पर वह स्वाभाविक कह उठता है कि शायद मेरे भाग्य में यही लिखा था। यही व्यक्ति शायद भ्रमित हो जाता है। चैतन्य यही दोनों चाहिए। उससे अपने कर्म को कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए। क्योंकि किसी नवीन तकनीकी को प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रयोग पहले होते रहते हैं। उसमें कभी–कभी सफलता तथा असफलता मिलते–मिलते एक निष्कर्ष पर जब पहुँचता है तो उसे सफलता प्राप्त ही हो जाती है। कदाचित हम कार्य विमुख हो जाते हैं। जिससे अपेक्षित परिणाम से निराशा हाथ लगती है। बड़ी चीज को प्राप्त करने के लिए बड़ा प्रयोग करना पड़ता है। परमात्मा को (क्षेत्रज्ञ) को जानना क्षेत्री के लिए उसी प्रकार के प्रयोगों से गुजरना होता है। सद्गुरुदेव भगवान के वे उपदेश जो उन्होंने कहा कि इतनी साधना करो कि पुनः मनुष्य जन्म ही प्राप्त हो। इतनी साधना का निश्चित पैमाना कहाँ तक है? जब तक कि व्यक्ति त्रिगुणमयी को साधकर अपने लक्ष्य को न प्राप्त कर ले। जब ऐसी स्थिति आयेगी तो उसका परिणाम भी व्यक्ति में स्वाभाविक दिखेगा। जैसे अच्छे विद्यार्थी की मेधा का ज्ञान विभिन्न परीक्षाओं से ज्ञात होता रहता है। वैसे ही साधक को भी यह महसूस होता रहता है। वैसे ही साधक भी अच्छे परिणाम को महसूस करता रहता है। अन्ततः अच्छे परिणाम प्राप्त कर लेता है। भगवान ने क्षेत्र क्षेत्रज्ञ को और विस्तार से बताते हुए कहा कि :–

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञ संयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ:।।

भगवान ने कहा – अर्जुन जितने भी स्थावर और जङ्गम प्राणी उत्पन्न होते हैं उन

सबको तू क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही उत्पन्न जान।

सर्वत्र उसी क्षेत्रज्ञ की सर्वोच्चसत्ता विद्यमान है। आवश्यकता इस बात की है कि साधक सचेष्टवृत्ति वाला होकर दोनों के ओर वृत्ति को अर्थात् क्षेत्र को जड़ विकारी क्षणिक तथा नाशवान मान कर तथा क्षेत्रज्ञ को नित्य, चेतना, अविकारी और अविनाशी जानकर साधन में तत्परता से लगना चाहिए। जिससे दोनों का ज्ञान प्राप्त कर साधक अगले आध्यात्मिक सोपानों को प्राप्त कर लक्ष्य की ओर निरन्तर अग्रसर होता रहे। जिससे इस क्षेत्र की सफलता का बराबर आभास होता रहे।

योग आसन

योगासनों का प्रचार भारतवर्ष में काफी तीव्रता से बढ़ रहा है, 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' के नियमानुसार विभिन्न मतियों के व्यक्ति अपनी-अपनी सूझ के अनुसार आसनों का विवरण लिखते हैं, किंतु उनमें से बहुत कम लोग इस प्रकार के हैं, जिन्होंने शास्त्र सिद्धान्तों को सामने रखते हुए उन आसनों को या मुद्राओं को लिखने का प्रयत्न किया हो। योगासन एवं योग मुद्राओं को एक यौगिक व्यायाम समझा जाता है। व्यायाम का परिणाम शारीरिक शुद्धि और बल को बढ़ाने वाला है। योगासन और मुद्रायें यौगिक व्यायाम हैं, इसमें कोई शंका की बात नहीं किन्तु इन सभी साधनाओं के सम्बन्ध परमार्थ मूलक भी अवश्य है ही। अधिकतर ये यौगिक व्यायाम आजकल केवल मात्र शारीरिकोन्नति के लिए ही किया और कराया जाता है। जो लोग नित्य नियम से यौगिक व्यायाम करते है, उनकी शारीरिक उन्नति तो बढ़ती ही रहती है साथ ही परमार्थ साधना भी अवश्य ही बनती है। योगासनों के करने से शरीर की सभी नाड़ियाँ शुद्ध अवश्य होती हैं और नाड़ी शुद्धि का होना मन की एकाग्रता का एक खास साधन है।

(गुरुदेव कृत सचित्र योगासन से साभार)

विलय

(स्व.) डॉ. महेश चन्द्र चतुर्वेदी, डी.लिट्, फिरोजाबाद की पुस्तक 'प्रतिध्वनि' से

हम प्रभु को देखें, अच्छा है,
पर पर्याप्त नहीं है।
उनका आलिंगन कर के भी,
सब कुछ प्राप्त नहीं है।
हे प्रभु मुझ को अपने में,
घुलने दो खो जाने दो,
मिट जाने दो इससे पहले,
कार्य समाप्त नहीं है।
सत्कर्मों ने मेरे जीवन को भी,
नहीं छुआ है।
फिर भी, मेरे प्रभु का मुझ पर,
कृपा कटाक्ष हुआ है।
उनकी करुणा का भी अद्‌भुत,
स्वाद चखा है मैंने।
उस करुणा से मुझको नहला दो,
प्रभु यही दुआ है।

प्रेषक : डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, 1, प्रोफेसर्स कॉलोनी, गोरखपुर

शोक संवेदना

स्व. कमरुद्दीन कछवा मीरजापुर के निवासी थे। आपके पिता श्री अमानुल्लाह पेशे से शिक्षक थे। आप मुस्लिम धर्मावलम्बी होते हुए भी आनन्दकन्द श्री सद्‌गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से सन् 1975 के आस-पास योग में दीक्षित होकर गहन साधना करते हुए उच्च स्थिति को प्राप्त किये। आपका देहावसान दिनांक 25-8-2011 को हो गया। सिद्धयोग परिवार शोक सन्तप्त परिवार को अपनी हार्दिक संवेदना प्रगट करता है।

- सम्पादक सिद्धयोग

समाधि-सिद्ध महात्मा श्री रामसुभज्ञ जी

जीवन – चरित्र : उत्तर प्रदेश के जिला आजमगढ़ के चाँदपुर (अखरचन्दा) ग्राम में प्रतिष्ठित ब्राह्मण शिवदान मिश्र जी के दूसरे नम्बर के पुत्र रामसुभज्ञ जी थे। अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में गुरुवार के दिन आपका जन्म हुआ था।

पठन–पाठन में आपकी विशेष रुचि नहीं रहती थी। बाल्यकाल से ही अधिकतर एकान्त में रहते। ग्राम के बाहर खेतों–झाड़ियों में छिपकर ईश्वर के नाम का स्मरण करते थे। चौदह–पन्द्रह वर्ष के वय प्राप्त होने पर पिता के साथ वाराणसी गंगा स्नानार्थ गये। वहीं कुलगुरु से रामतारक मन्त्र का उपदेश ग्रहण किये। घर लौटने पर विद्या–अध्ययन हेतु माता–पिता पाठशाला भेजाते परंतु स्वाभाविक रुचि आपकी व्यायाम और भजन में रहती।

महात्मा रामसुभज्ञ जी भव–पलायी योगी पुरुष थे। कुलगुरु के दिये मंत्र का नित्य–निरन्तर जाप करने से सांसारिक विषय–वासना से मन उचाट होता गया। अन्तर में एक अनबूझ अभाव कचोटता रहता जो सन्त महात्माओं के सत्संग एवं दर्शन से थोड़ा विश्राम पाता था।

अयोध्या, काशी, प्रयाग में जाकर उस काल के महापुरुषों संतों का सानिध्य लाभ करते रहते थे। सतत् बीस वर्ष से 28 वर्ष तक तीर्थाटन में ही रमे रहे। विवाह की बात चलते ही परिवार त्याग बाहर निकल जाते। एक बार काफी वर्षों तक अज्ञात रहे। इसी काल में महात्मा रामसुभज्ञ जी जगन्नाथपुरी, कामाख्यादेवी, आसाम, कलकत्ता, कूचविहार भ्रमण करते हुए अयोध्यापुरी आये। अकस्मात् स्नान करने आये माता–पिता से भेंट हो गयी। माता–पिता के रुदन एवं प्रेम परवश होकर गाँव लौटे।

एक दिन ईख के खेत में रखवाली हेतु गये। एकान्त में मन–मंत्र अवगाहन में लगा हुआ था तभी अर्ध रात्रि के समय एक तेजस्वी महात्मा प्रकट होकर बोले– हे! भजनानन्द ब्रह्मचारी आज से इस सर्वोत्तम बीजमन्त्र को जपते रहना इससे ही आत्मज्ञान जागृति होगा। ऐसा उपदेश कर वे महात्मा अन्तर्ध्यान हो गये।

पुनः द्वितीय बार जगन्नाथपुरी, सेतुबन्ध रामेश्वर, द्वारका सुदामापुरी, गिरनार, हरिद्वार और बद्रिकाश्रम होते हुए मथुरा में आये। खिदिर वन में पन्द्रह वर्षों तक एक स्थान पर रहकर साधनरत रहते हुए ज्ञानोपदेश जिज्ञासुओं को करते रहे।

गिरिनार पर्वत की यात्रा

गिरिनार पर्वत के तलहटी में निवास करने वाले सन्तों ने इन्हें पर्वत शिखर की ओर जाने से वर्जित किया। जंगल एवं जंगली जानवरों तथा मार्ग की भयंकर और कठिनाई आदि भय दिखाया और बताया कि जो लोग गये वह फिर वापस नहीं आये। महात्मा ने दृढ़ संकल्प कर सोचा यह शरीर जंगली जानवरों का भोज्य बन जावे अथवा मुझे सिद्ध दर्शन हो, मुझे ऊपर की यात्रा करना है। यात्रा पर्वत शिखर की ओर करते हुए जगत्गुरु श्री मुरलीमनोहर योगेश्वर का स्मरण करते हुए रात्रि हो गया। कृष्ण पक्ष की अन्धेरी रात्रि से मार्ग का कुछ पता नहीं लगता था। अतः एक प्रस्तर खण्ड जो चबूतरे जैसा था वहीं आसन लगा कर बैठ गये।

पाँच घड़ी रात्रि व्यतीत होने पर चन्द्रमा का प्रकाश होने लगा। उन्हें अग्निकोण में प्रकाशपूर्ण तीन पुरुष दिखाई दिये। बीच का पुरुष विशेष लम्बा, दीर्घकाय महाभयकारी था। सिर की जटा कमर के नीचे तक लटक रही थी। महात्मा रामसुभग जी ने उठकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वे तेज पूर्ण सिद्ध पुरुष अत्यन्त मधुर और गम्भीर स्वर में अपना परिचय भूरया सिद्ध कहकर दिया। तुमको अष्टांग योग में दीक्षित करने आया हूँ। अब सावधान होकर सम्पूर्ण विधि एवं साधन को प्राप्त करो। सात दिन तक यहाँ रहकर अभ्यास करते रहो, मैं आठवें दिन फिर आऊँगा।

आठवें दिन सायंकाल में भूरया सिद्ध वहाँ प्रकट हुए। महात्मा रामसुभग को प्राणायाम का सम्पूर्ण साधन सिद्ध करा दिया। सतयुगी महात्मा जो साधन किया करते थे वही साधन का उपदेश तुमको दिया गया है। इसके अभ्यास से जीवनमुक्त होकर त्रिकालज्ञ हो जाओगे। भूरया सिद्ध ने कहा एक जन्म अभी तुमको और लेना पड़ेगा।

दूसरा जन्म, अयोध्या के एक गरीब ब्राह्मण के घर में होगा। तब 16 वर्ष की अवस्था में फिर तुम यहाँ गिरनार आओगे उस समय हम पुनः दर्शन देकर तुमको परिपूर्णता प्रदान करेंगे। इतना सब कहकर वह सिद्ध पुरुष अन्तर्ध्यान हो गये। तत्पश्चात् महात्मा जी भ्रमण करते हुए अपने गृह ग्राम में लौटे। गाँव के बाहर एक गुफा बनवाकर उसमें छः मास तक समाधि रत रहे। इस प्रकार की समाधियाँ अनेक जगहों पर कई–कई माह की लगाते रहे। लोगों में योग–भक्ति के प्रति निष्ठा जागरण द्वारा श्रेय मार्ग की ओर चलने की प्रेरणा आजीवन देते रहे।

120 वर्ष की आयु में भी योगाभ्यास के प्रभाव से पूर्ण स्वस्थ बलिष्ठ थे। अपने अंतिम समाधि तथा देह त्याग की बात एक सप्ताह पूर्व ही अपने अन्तरंग शिष्यों को बताया तथा बताये तिथि पर रविवार मध्यान्ह बारह बजे उत्तराभिमुख होकर पद्मासन में प्रसन्न मन बैठकर समाधि द्वारा प्रणव ध्वनि के साथ लौकिक काया का विसर्जन कर दिया।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा, ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं, शरवत्तन्मयो भवेत्।।

मण्डकोपनिषद् 2/4

पातंजलि योगदर्शन विभूतिपाद में एक सूत्र परकाय प्रवेश का बताया गया है। सर्वार्थक चित्त का एक शरीर में रहना बन्धन कारक है। समाधि बल (संयम– धारणा, ध्यान समाधि) द्वारा यह बन्ध शिथिल होने से चित्त के प्रसार भूत नाड़ियों में गमना–गमन के स्वरूप को योगी जानकर अपने शरीर से निकलकर अन्य शरीर को धारण कर सकता है। चित्त के साथ ही सब इन्द्रियाँ भी दूसरे शरीर में प्रवेश करती हैं।

बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचार संवेदनाच्च,

चित्तस्य परशरीरावेशः।।

(पा यो वि. 3/38)

एक बार एक मृत चिड़िया के शरीर में अपने चित्तमय कोष को प्रविष्ट कर इधर–उधर उड़ने लगे। उस समय उनका मानव शरीर प्राणहीन था। कुछ देर बाद वे अपने शरीर में वापस आ गये।

श्री रामसुभग्न जी, बहुत अधिक लौकिक विद्या का अध्ययन न होने पर भी योग–साधना के प्रभाव से अन्तरनाद एवं आत्मबोध के प्रभाव से 'ज्ञान दीपक ग्रंथ' की रचना किया है। अनुभवजन्य अष्टांग–योग, ज्ञान–योग युक्त, अनहद, ब्रह्म जीव अनुराग, अजपा–जप विज्ञान, श्रुतिशास्त्रोक्त गुरुगम्य ज्ञान तथा आत्मज्ञान के बारे में पद्यों की रचना स्वस्फुर्त हुआ है। कुछ पद्यों को देखें–

जब काल प्रचण्ड लखे तब हीं,

ब्रह्माण्ड सुखण्डहिं वास करे।

बिनु साधन कालहिं भीरु लखे,

धर धीर अज्ञानहिं काह करे।।

तेहि काल प्रचण्ड पछारि तुरन्त,

जो ज्ञान के डण्डन हाथ धरे।

करि योग कृपाणहिं पाणि धरे।

लखि रामसुभग्न को काल डरे।।

काल की बंचना प्राण को ब्रह्माण्ड में योग युक्ति से स्थापित करके ही योगी करता है। अन्तर अनहद बोध का वर्णन माधुर्य पढ़े–

ॐ कार ध्वनि झनकार घन

सुनि मगन है मन नाचता।

घहरात धुनि अनहद महा,

सुख सुरति शब्दहिं जाँचता।।

कहलार कर अनहद पार,
विहार पर मन लावता।
गुंजार भृङ्ग से शब्द जन,
राम सुभग सुख पावता।।

योग आसन

सर्वांगासन

सर्वांगासन के द्वारा सबसे अधिक प्रभाव थोरायड ग्रन्थियों पर पड़ता है और यह स्वस्थ बने रहते है। थोरायड के स्वस्थ रहने से सारा शरीर स्वस्थ रह सकता है। थोरायड एक नली विहीन ग्रन्थि है। शरीर में कुछ ग्रन्थियाँ नली विहीन होती हैं जैसे थोरायड, पैरा–थोरायड, प्लीहा, अण्डकोष आदि। यकृत नली युक्त ग्रन्थि है। जिन ग्रन्थियों में नलिका होती है वे अपने रस को दूसरे अंगों में प्रवाहित करती है। नीली विहीन ग्रन्थियाँ अपने रस को सीधे रक्त में डालकर पोषण करती हैं। इन सब ग्रन्थियों में थोरायड का स्थान सबसे प्रधान है। यह ग्रन्थि शरीर की अन्य ग्रन्थियों को भी स्वस्थ बनाने में बड़ा सहयोग देती हैं। यही कारण है कि सर्वांगीगासन से सारे शरीर की स्वस्थता प्राप्त हो जाती है। इस सम्बन्ध में हम आगे चर्चा करेंगे, अभी हम थोरायड को थोड़ा और समझाने का प्रयास करेंगे।

यह ग्रन्थि मनुष्य की ग्रीवा के कुछ नीचे ग्रास नली के दोनों ओर स्थित होती है। इसके दो पिण्डक है जो ऊपर की ओर फैले रहते हैं और नीचे की ओर जुड़े रहते हैं। ग्रन्थि का प्रत्येक पिण्ड लगभग पांच सेण्टीमीटर लम्बा व तीन सेण्टीमीटर चौड़ा होता है। इसका ऊपरी भाग नुकीला और नीचे का भाग चौड़ा होता है। इस ग्रन्थि का रंग भूरा होता है। ग्रन्थि में पीले रंग का हारमोन बनता है जिसे Thyroxin कहते हैं। थाइरोक्सिन का प्रमुख भाग आयोडीन होता है। भोजन में आयोडीन की कमी से यह ग्रन्थि फूलने लगती है और मनुष्य को घेघा रोग हो जाता है।

इस ग्रन्थि में रक्त के श्वेत कीटाणुओं की प्रमुख छावनी रहती है। अर्थात् यह उनका सबसे बड़ा सुदृढ़ किला है। यह ग्रन्थि जब तक सशक्त रहती है और अपना कार्य ठीक प्रकार करती रहती है तब तक मनुष्य के ऊपर रोगों का आक्रमण नहीं होता है और वृद्धावस्था जल्दी नहीं आती है। जब यह ग्रंथि ठीक कार्य नहीं करती तब शरीर में कीटाणु अपना प्रभाव जमाने लगते हैं और मनुष्य स्वस्थ नहीं रहता।

स्वस्थ रहने की रामबाण दवा

(साभार कल्याण से)

(गतांक से आगे)

जिस प्रकार संध्यावन्दन तथा अग्निहोत्रादि प्रातः–सायं दो बार करने की विधि है, उसी प्रकार भोजन भी गृहस्थ को प्रातः–सायं दो बार ही करना चाहिए। भोजन से पूर्व भोजनपात्र का परिसेचन (चारों ओर जल का मण्डल) करना चाहिए, जिससे कीट आदि भोजन की थाली से दूर रहें। भोजन प्रारम्भ करने के पूर्व लवणरहित तीन ग्रास 'ॐ भूपतये स्वाहा, ॐ भुवनपतये स्वाहा, ॐ भूतानां पतये स्वाहा' – इन तीन मन्त्रों से थाली से बाहर दायीं ओर निकालकर रखना चाहिए तथा इन्हीं मन्त्रों से जल भी छोड़ना चाहिए। इन तीन ग्रासों में पृथ्वी, भुवनमण्डल तथा सम्पूर्ण प्राणियों को तृप्त करने की भावना है। तदनन्तर भोजन प्रारम्भ करने के पूर्व लवणरहित पाँच छोटे–छोटे ग्रासों को – 'ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा' – इन पाँच मन्त्रों से मुँह में लेना चाहिए। इन पाँच ग्रासों के द्वारा आत्मस्वरूप ब्रह्म के प्रीत्यर्थ जठराग्नि में आहुति प्रदान करने का भाव है। भोजन के पूर्व 'ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा' इस मन्त्र से आचमन करे। इसका तात्पर्य है मैं अपने भोजन को अमृतरूपी बिछावन (आधार) प्रदान करता हूँ। इसके बाद मौन होकर प्रसन्न मन से खूब चबा–चबाकर भोजन करें। आयुर्वेद के अनुसार एक ग्रास को लगभग बत्तीस बार चबाना चाहिए। जो अन्न को चबाकर नहीं खाता, उसके दाँत कमजोर हो जाते हैं तथा दाँतों के बदले उसकी अँतड़ियों को काम करना पड़ता है, जिससे अग्नि मंद हो जाती है। कहा गया है कि अन्न के दो भाग, जल और वायु के एक–एक भाग द्वारा उदर की पूर्ति करनी चाहिए। भोजन करते समय जल न पीना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। आवश्यकतानुसार जल पीना हो तो भोजन के मध्य में थोड़ा–थोड़ा पीना चाहिए। भोजन के अन्त में जल पीना उचित नहीं है। भोजन के कम–से–कम एक घण्टे बाद इच्छानुसार जल पीना चाहिए। भोजन के अन्त में 'ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा' मन्त्र बोलकर आचमन करे। इसका तात्पर्य है कि मैं अपने भोजन प्रसाद को अमृत से आच्छादित करता हूँ।

अप्रसन्न मन से, बिना रुचि के, भूख से अधिक और अधिक मसालों वाला चटपटा भोजन शरीर के लिए हानिकारक होता है। भोजन न तो इतना कम होना चाहिए, जिससे शरीर की शक्ति घट जाय और न इतना अधिक होना चाहिए कि जिसे पेट पचा ही न सके।

बहुत प्यास लगी हो, पेट में दर्द हो, शौच की हाजत हो अथवा बीमार हो – ऐसे समय भोजन न करे, अपवित्र स्थान में, संध्याकाल में, गंदी जगह, फूटी थाली आदि में भोजन न करे।

भोजन बनाने और परोसने वाला मनुष्य दुराचारी, व्यभिचारी, चुगलखोर, छूत का रोगी, कोढ़ और खाज–खुजली का रोगी, क्रोधी, वैरी और शोक से ग्रस्त नहीं होना चाहिए। जिस आसन पर भोजन करने बैठे, उसे पहले झाड़ लेना चाहिए और सुखासन से बैठकर भोजन करना चाहिए। भोजन करते समय गुस्सा न हो, कटु वचन न कहे। भोजन में दोष न बतलावे, रोवे नहीं। शोक न करे, जोर से न बोले। किसी दूसरे को न छुवे, वाणी का संयम करके अनिषिद्ध अन्न का भोजन करे। अन्न की निन्दा न करे। बहुत गरम तथा बहुत ठंडी चीज दाँतों से चबाकर न खाये। अधिक तीखा, अधिक कड़वा, अधिक नमकीन, अधिक गरम, अधिक रूखा, अधिक तेज भोजन राजसी है और अधकच्चा, रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, बासी और जूठा अन्न तामसी है। राजसी, तामसी अन्न का, मांस – मद्य का तथा शास्त्रनिषिद्ध अन्न का त्याग करना चाहिए। भोजन के आदि में अदरक को कतरकर उसके साथ थोड़ा नमक मिलाकर खाना अच्छा है। जीभ के स्वादवश अधिक खा लेना उचित नहीं है।

एक थाली में दो आदमी न खायें। इसी प्रकार एक कटोरे या गिलास में दूध या पानी न पियें। सोये हुए न खायें, दूसरे के हाथ से न खायें। दूसरे के आसन अथवा गोद में लेकर अन्न न खायें।

ताँबे के बरतन में दूध न रखें। जिस दूध में नमक गिर गया हो उसे कभी न पियें। पीतल के बरतन में खट्टी चीज रखकर न खायें। एकादशी, पूर्णिमा, अमावास्या आदि दिनों को व्रत रखना चाहिए। व्रत के दिन निराहार रहे या परिमित आहार करे, केवल जल पीना अच्छा है।

रजस्वला स्त्री का स्पर्श किया हुआ, पक्षी का खाया हुआ, कुत्ते का छुआ हुआ, गाय का सूँघा हुआ, कीड़ा, लार, थूक आदि पड़ा हुआ, अपमान से मिला हुआ तथा वेश्या, कलाल, कृतघ्नी, कसाई और राजा का अन्न नहीं खाना चाहिए।

भोजन में चौके की व्यवस्था – धूल और दुर्गन्धरहित, प्रकाशयुक्त, शुद्ध हवादार स्थान में भोजन बनाना चाहिए। चारों ओर से घिरी हुई जगह में बैठकर भोजन करना चाहिए। प्राचीन काल से ही अपने यहाँ चौके की व्यवस्था पर बहुत ध्यान दिया जाता रहा है। चौके के भीतर जो वैज्ञानिकता है, उसे आजकल लोग भूलते जा रहे हैं। चौका चार प्रकार की शुद्धियों का समुच्चय है और भोजन में इन चारों प्रकार की शुद्धियों की आवश्यकता है। इससे किया गया भोजन हमारे शरीर को स्वस्थ तथा मन को पवित्र बनाता है। ये चार शुद्धियाँ हैं– (1) क्षेत्रशुद्धि, (2) द्रव्यशुद्धि, (3) कालशुद्धि और (4) भावशुद्धि।

(1) क्षेत्रशुद्धि – भोजन करते समय हमें क्षेत्र या स्थान की शुद्धि पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है ; क्योंकि प्रत्येक स्थान का वायुमण्डल, वातावरण, पर्यावरण हमारे मन तथा तन को जब प्रभावित करता है तो हमारे भोजन को भी प्रभावित करेगा ही। यदि किसी व्यक्ति को मरघट या श्मशानभूमि अर्थात् किसी अपवित्र स्थान में भोजन कराया जाय और उसी व्यक्ति को उपवन आदि किसी पवित्र स्थान पर भोजन कराया जाय तो इन दोनों स्थानों

के भोजन, पाचन में पर्याप्त अन्तर का अनुभव होगा। इसी प्रकार बाजारों में, गलियों आदि के आस–पास, कूड़ा–कचरा और उन पर भिनभिनाती मक्खियाँ, मच्छर तथा खाद्यपदार्थों पर जहाँ धूल जमी हो, ऐसे दूषित स्थानों पर जब व्यक्ति चाट, पकौड़ी, मिष्ठान्न आदि खाता–पीता है तो कदाचित् वह भूल जाता है कि ऐसे स्थानों का पर्यावरण पर्याप्त दूषित है। ऐसे वातावरण में बैक्टीरिया, कीटाणु, भोजन के साथ शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, जो शरीर में रुग्णता पैदा करते हैं। चौके की व्यवस्था के अन्तर्गत यह क्षेत्रशुद्धि स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त वैज्ञानिक और लाभदायक है। प्राचीन परम्परा के अनुसार चौके में अनधिकृत व्यक्ति का प्रवेश निषिद्ध रहता था। केवल अधिकृत व्यक्ति ही भोजन छूने के अधिकारी होते थे।

(2) **द्रव्यशुद्धि** – द्रव्य भी हमारे भोजन पर बड़ा असर डालता है। अनीति, अनाचार और बेईमानी आदि अधर्म के साधनों के धन से बनाया गया भोजन हमारे तन तथा मन को प्रभावित करता है। ऐसा भोजन हमारे परिणामों को सात्विक कभी भी नहीं बना सकता।

(3) **कालशुद्धि** – काल या समय का भी भोजन पर प्रभाव पड़ता है। जो लोग समय पर भोजन नहीं करते, वे अक्सर उदरसम्बन्धी व्याधियों से सदा पीड़ित रहते हैं। भूख लगने पर भोजन करना भोजन का सर्वोत्तम समय है तथा नियमित समय से भोजन करना स्वास्थ्य के लिए उत्तम है। गृहस्थ के लिए सूर्य रहते दिन में भोजन करना चाहिए तथा दूसरे समय का भोजन सूर्यास्त के बाद करने की विधि है। मानव को हितकर भोजन उचित मात्रा में उचित समय पर करना चाहिए – 'हिताशी स्यान्मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः'। (चरक)

(4) **भावशुद्धि**– भोजन पर भावनाओं का भी गहरा प्रभाव पड़ता है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को नीरोग रहने के लिये भोजन शुद्ध भाव से करना चाहिए। क्रोध, ईर्ष्या, उत्तेजना, चिन्ता, मानसिक तनाव, भय आदि की स्थिति में किया गया भोजन शरीर के अंदर दूषित रसायन पैदा करता है। जिसके फलस्वरूप शरीर विभिन्न रोगों से घिर जाता है। शुद्ध चित्त से प्रसन्नतापूर्वक किया गया आहार शरीर को पुष्ट करता है, कुत्सित विचारों एवं भावों के साथ किये गये भोजन से व्यक्ति कभी भी स्वस्थ नहीं रह सकता। इसके साथ ही भोजन बनाने वाले व्यक्ति के भी भाव शुद्ध होने चाहिए। उसे भी ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि से ग्रस्त नहीं होना चाहिए।

इस प्रकार इन चारों शुद्धियों के साथ यदि भोजन करेंगे तो निश्चित रूप से हमारा मन भी निर्मल रहेगा और शरीर भी नीरोगी रहेगा।

क्रमशः

पाठ से नहीं, पुरुषार्थ से गाड़ी चली

यदि मनुष्य का स्वयं का कुछ किया हुआ न हो तो स्वयं विधाता भी उसकी सहायता नहीं कर सकता, क्योंकि सृष्टि का विधान अटल है। जिस प्रकार विधान बनाने वाले विधायकों को स्वयं उसका पालन करना पड़ता है, वैसे ही ईश्वरीय अवतार और महापुरुष तो क्या स्वयंभगवान भी अपने बनाए विधानों का उल्लंघन नहीं कर सकते। इससे तो उनका सृष्टि संचालन ही अस्त-व्यस्त हो जायेगा। इस संबंध में उन लोगों को सचेत होकर अपना कर्म करना चाहिये जो सोचते हैं कि भगवान सब कर देंगे और स्वयं हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें।

एक आदमी श्री हनुमान का उपासक था। एक बार वह बैलगाड़ी लिए कहीं जा रहा था। गाड़ी कीचड़ में फंस गई, वह वहीं खड़ा होकर हनुमान चालीसा का पाठ करने लगा और गाड़ी बाहर निकालने की कामना करने लगा। तभी उधर से आए एक पण्डित जी ने कहा - मित्र ! हनुमान जी संजीवनी का पता न चलने पर पहाड़ ही उखाड़ लाए थे, तुम कम से कम गाड़ी को हाथ तो लगाओ। आदमी ने थोड़ी ताकत लगाई और बैलगाड़ी बाहर खींच ले गया।

देवता हों या महापुरुष वे तब तक फल नहीं देते, जब तक मनुष्य स्वयं उन आदर्शों के परिपालन के लिए समुद्यत नहीं होता। कर्म विधान पर भी यही सिद्धान्त लागू होता है। ईश्वर उनका फल तब दे जब मनुष्य को बलवान बनाए, याचना भाव नहीं समर्पण भाव बढ़ाये।

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सीवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

संस्थापक :— योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिंटिंग प्रेस, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य (डॉ.) रामलाल शर्मा